पद्य रत्नाकर

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

पद्य-रत्नाकर

[नवीन, प्राचीन और उर्दू कविताओं का संग्रह]

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

मद्रास

दो शब्द

हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों की चुनी हुई श्रेष्ठ कविताओं का यह संग्रह सभा की राष्ट्रभाषा विशारद तथा यूनिवर्सिटियों के बी.ए. के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है।

इस संग्रह में आधुनिक हिन्दी काव्य-क्षेत्र के प्रवर्तकों से लेकर नवीन धारा के प्रमुख प्रतिनिधि कवियों तक की कविताएँ दी गयी हैं।

विषय की दृष्टि से यह पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में डेढ़ हज़ार से अधिक पंक्तियाँ नवीन पद्य की दी गयी हैं, द्वितीय खण्ड में उर्दू की उत्कृष्ट कविताओं की लगभग पाँच सौ पंक्तियाँ तथा तृतीय खण्ड में प्राचीन पद्य की लगभग चार सौ पंक्तियाँ दी गयी हैं।

प्राचीन पद्य का संबन्ध हिन्दी पद्य के विकास परंपरा से है, और उर्दू भी हिन्दी की एक विशिष्ट शैली मानी गयी है। अतः हमने यह आवश्यक समझा कि आधुनिक हिन्दी कविता के साथ-साथ प्राचीन पद्य तथा उर्दू शायरी का भी परिचय विद्यार्थियों को कराया जाए।

जिन कवियों ने अपनी कविताएँ इस संग्रह में जोड़ने के लिए अनुमति प्रदान की है, उनके प्रति सभा अत्यन्त अभारी है। हमारी आशा है कि हिन्दी प्रेमी एवं विद्यार्थीगण इस काव्य-संग्रह का स्वागत करेंगे।

—प्रकाशक

विषय-सूची

आधुनिक-पद्य

उर्दू पद्य

प्राचीन-पद्य

हिन्दी काव्य-धारा

(प्राचीन काल)

हिन्दी काव्य-साहित्य का इतिहास 1200 वर्ष पुराना है। किन्तु पं० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 1000 वर्ष पुराना है। इस प्रकार हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दी साहित्य का इतिहास ही हिन्दी काव्य-धारा की कहानी है। सुदीर्घ परंपरा रखनेवाली इस काव्य-धारा का विद्‍वानों ने अपने-अपने ढंग से काल-विभाजन किया है। परंतु पं० रामचंद्र शुक्ल का काल-विभाजन ही अनेक दृष्टियों से प्रामाणिक कहा जा सकता है। पं० रामचंद्र शुक्ल ने निम्न प्रकार से काल विभाजन किया है।

1. आदिकाल या वीरगाथा काल वि. सं. 1050 से 1375 तक।
2. पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल वि. सं. 1376 से 1700 तक।
3. उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल वि. सं. 1701 से 1900 तक।
4. आधुनिक काल या गद्‍य काल वि. सं. 1901 से आज तक।

आदिकाल या वीरगाथा काल—(वि. सं. 1050 से 1375 तक)

इस युग में एक ओर सिद्‍ध और नाथपंथी साधु लोकभाषा में अपनी रचनाएं प्रस्तुत कर रहे थे तो दूसरी ओर कवि, चारण और भाट अपने आश्रयदाताओं के दरबार में रहकर अपने आश्रयदाता की वीरता, शत्रु-सुताहरण और उनकी विजय का अतिरंजित वर्णन करने में लगे हुए थे।

हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य टूटकर छोटे-छोटे राज्यों में बँट चुका था। उन राज्यों के भीतर परस्पर संघर्ष होते रहे। उसी समय उत्तर-पश्चिम की ओर से बराबर मुसलमानों के हमले होते रहे। दरबारी कवि न केवल अपने आश्रयदाता की प्रशंसा करते थे, अपितु युद्‍ध-भूमि में जाकर अपने वीरगीतों द्‍वारा योद्‍धाओं को प्रोत्साहित भी करते थे।

वे कविता करने में ही नहीं अपितु खड्ग चलाने में भी निपुण थे। इस प्रकार उन कवियों ने युद्ध-भूमि की आँखों देखी घटनाओं का चित्रण किया है। प्राय: युद्धकाल में वीर रस प्रधान काव्यों की ही रचना हो सकती थी। युद्ध मुख्यत: नारी के कारण करते थे। अत: उस युग के काव्यों में शृंगार रस का भी पुट पाया जाता है।

वीरगाथा-काल के काव्यों को 'रासो काव्य' कहते हैं। रासो शब्द की उत्पत्ति रसायन शब्द से मानी जाती है। रसायन शब्द का प्रयोग पहले काव्य के अर्थ में होता था। वीर गाथाएं दो रूपों में पायी जाती हैं—प्रबंध काव्य और वीर गीत। रासो ग्रंथों में खुमान रासो का नाम ही पहले आता है। उसका कवि दलपत विजय है। उस काव्य में चित्तोड़ के राजा खुमान की लड़ाइयों का वर्णन मिलता है।

वीरगाथा-काल का द्वितीय काव्य बीसलदेव रासो है, जिसमें अजमेर के चौहानवंशी राजा बीसलदेव के विवाह तथा उनका रूठकर उड़ीसा चले जाने का वृत्तांत सौ पृष्ठों में वर्णित है। नरपति नाल्ह ने वि. सं. 1212 के क़रीब राजस्थानी भाषा में इसका प्रणयन किया है।

इस युग का महत्वपूर्ण प्रबंध-काव्य चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' है, जिसमें चौहानवंशी दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज का समग्र जीवन-चरित्र' प्रस्तुत है। कवि चन्दबरदाई काव्य, साहित्य, व्याकरण, छन्दशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र इत्यादि के मर्मज्ञ विद्वान थे। इस काव्य में कुल 69 समय या अध्याय हैं। आबू के यज्ञकुण्ड से चार क्षत्रिय कुलों के जन्म से लेकर पृथ्वीराज तथा चन्दबरदाई के मरण तक की कथा इसमें वर्णित है। कवि चन्द भी पृथ्वीराज के साथ मारा गया था। इसलिए हिन्दुस्तान छोड़ने के पूर्व उसने अपने काव्य का शेषांश लिखने का आदेश अपने पुत्र जल्हन को दिया था। निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा इस बात का पता लगता है—

"पुस्तक जलहण हत्थ दै, चल्यौ गज्जन नृप काज।"

भट्टकेदार तथा मधुकरकवि कृत 'जयमयंक जस चंद्रिका' और 'जयचन्द्र प्रकाश' इस युग के उत्तम काव्य-ग्रन्थ हैं। ये दोनों कन्नौज के राजा जयचन्द्र के दरबारी कवि थे।

इसी युग का एक और महत्वपूर्ण काव्य जगनिक कृत 'आल्हाखंड' है। जगनिक कालिंजर के राजा परमाल का दरबारी कवि था। इसने महोबे के दो महान वीरों का चरित गीतों में प्रस्तुत किया है। वे वीर आल्हा और ऊदल थे। यह काव्य जनता में वीर रस का संचार करने में पर्याप्त सफल हुआ है। कतिपय विद्वानों का विचार है कि जगनिक ने एक बृहत् काव्य का सृजन किया होगा और आल्हाखंड उसका एक अंश या खंड मात्र है।

वीर काव्य की परंपरा के अतिरिक्त भी इस युग में कुछ काव्य रचे गये। मैथिल कोकिल विद्यापति की कृतियाँ इस कोटि में आती हैं। विद्यापति मिथिला के नरेश शिवसिंह के स्नेह पात्र थे। विद्यापति ने राधा-माधव का प्रणय-वृत्तांत जिस सरसता के साथ प्रस्तुत किया, वह अद्भुत है। उनके गीत शृंगार रस प्रधान हैं। कीर्तिलता और कीर्ति-पताका उनके प्रधान काव्य हैं।

अमीर खुसरो की मुकरियों और पहेलियों की रचना भी इस युग के अंतिम काल में हुई।

भक्तिकाल—(वि. सं. 1376 से 1700 तक)

वीरगाथा काल के समाप्त होते-होते समस्त हिन्दुस्तान पर मुसलमानों का अधिकार हो चुका था। यहाँ के हिन्दू नरेश उनका सामना करने में असमर्थ-से हो गये थे। न उनके हाथ में राज्य बचे थे और न वे मुसलमान बादशाहों को पराजित करने की क्षमता रखते थे। चारण और भाट कवि जो पहले हिन्दू नरेशों के दरबारों में रहते थे, अब निराश्रित हो गये थे। जनता भी विधर्मी शासकों के आतंक से त्रस्त थी। यही नहीं, उनकी जान,

माल व मान की रक्षा करना भी असंभव-सा हो गया था। उनकी रक्षा कर सकनेवाले कोई शासक नहीं था। ऐसी स्थिति के सिवाय सर्व-शक्तिमान ईश्वर की शरण में गये कोई मार्ग ही न था। अतः हिन्दू जनता सर्वशक्तिमान ईश्वर की शरण में गयी, जो भक्तवत्सल तथा दीन-रक्षक हैं और जिन्होंने अपने भक्तों की रक्षा के लिए समय-समय पर अवतार लिया था। हमारे धर्माचार्यों ने जनता का ध्यान गीताकार के इस कथन की ओर आकृष्ट किया—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥

अतः असहाय प्रजा में सर्वशक्तिमान परमात्मा की अनंत सत्ता का विश्वास पैदा करने का कार्य धर्माचार्यों द्वारा प्रेरणा ग्रहण कर कवियों ने अपनी लेखनी द्वारा संपन्न किया। तत्कालीन राजनैतिक दशा भी सर्वथा इसके अनुकूल थी।

हिन्दू नरेश युद्ध में पराजित होकर आत्म-ग्लानि का अनुभव कर रहे थे। मुसलमान बादशाह भी विश्राम चाहते थे। बादशाहों ने भली भाँति यह अनुभव किया कि अगर इस देश में बहुत समय तक रहकर राज्य करना है, तो हिन्दुओं से विरोध मोल लेना ठीक नहीं। हिन्दुओं ने भी विवशता की हालत में उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। परंतु अपने धर्म की रक्षा का बड़ा ही विकट प्रश्न उनके समक्ष उपस्थित था। ऐसे संक्रांति काल में कुछ ऐसे महान कवि एवं संत प्रकट हुए, जिन्होंने अपनी मधुरवाणी तथा रचनाओं द्वारा दोनों धर्मों और जातियों के बीच समझौता लाने का कार्य किया। वीरगाथा काल के पश्चात् जो भी साहित्य आया, वह भक्ति-प्रधान रहा। इसीलिए इस युग का नाम भी भक्तिकाल रखा गया है।

भक्तिकाल में जो भक्ति-प्रधान कृतियाँ रची गयीं तथा जो संप्रदाय प्रचलित हुए, वे विषय के आधार पर मुख्यतः चार प्रधान भागों में

विभाजित किये गये हैं। वे क्रमशः ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेममार्गी शाखा, रामभक्ति शाखा तथा कृष्णभक्ति शाखा के नामों से विख्यात हैं। परंतु प्रधान रूप से ये चारों शाखाएँ दो धाराओं के अंतर्गत मानी गयी हैं। प्रथम दो शाखाएं निर्गुणधारा के अंतर्गत आती हैं, तो शेष दो शाखाएँ सगुणधारा के अंतर्गत। इन शाखाओं के अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए, जिन्होंने अपनी भक्ति-प्रधान रचनाओं द्वारा हिन्दी वाङ्मय को सब प्रकार से समृद्ध बनाया। यही कारण है कि भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। भाषा, शैली, काव्य की रीतियों तथा काव्य के रूपों की दृष्टि से भी यह युग संपन्न रहा तथा इस युग की रीतियाँ परवर्ती कवियों के लिए भी अनुकरणीय बनीं। लक्ष्य-ग्रंथों की रचना इस काल में चरम उत्कर्ष तक पहुँची थी।

उपर्युक्त शाखाओं के प्रतिनिधि कवि क्रमशः कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास तथा सूरदास हैं। इस युग की पृष्ठभूमि पहले से ही तैयार हो चुकी थी। शंकर का मायावाद, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद तथा वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित शुद्धाद्वैतवाद एवं पुष्टिमार्ग के तत्वों को ग्रहण कर कबीर, तुलसी एवं सूर ने उनका साहित्यीकरण किया, तो जायसी ने सूफ़ी संप्रदाय को भारतीय वातावरण के अनुरूप प्रस्तुत किया।

कबीरदास ने तत्कालीन समाज की अंधरूढ़ियों का खण्डन कर निराकार एवं निर्गुण सर्वशक्तिमान ईश्वर की उपासना पर बल दिया। वे जाति-पांति, वर्ण-व्यवस्था, बाह्याडंबर इत्यादि के कट्टर विरोधी थे। मानव कल्पित इन रूढ़ियों को वे मानते न थे। साथ ही, जप, तप, उपवास, व्रत इत्यादि की निस्सारता का परिचय दिया। उनका सिद्धांत था— ज्ञान के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। संसार के इस मायाजाल से आत्मा को मुक्त होना चाहिए। मनुष्य इस प्रपंच में फंसा हुआ है और भ्रांति में पड़कर इस संसार को सत्य मान बैठा है। जब वह

अरिषड्-वर्ग पर विजय प्राप्त करेगा, तभी उसे परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। इस संप्रदाय के अन्य कवि हैं—नामदेव, गुरुनानक, रैदास, सुन्दरदास, धर्मदास, दादू दयाल आदि।

जायसी ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्व देते थे। उनका सिद्धांत था कि मनुष्य प्रेम के द्वारा ही सांसारिक बंधनों से मुक्त हो सकता है। परमात्मा भी पवित्रप्रेम के वशीभूत हो जाते हैं। उनको प्राप्त करने के पूर्व तत्संबंधी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। तदुपरांत ईश्वर को पाने की जिज्ञासा करनी चाहिए। इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए साधना की आवश्यकता है। साधना का मार्ग बड़ा विकट है। साधना के मार्ग में उपस्थित होनेवाले विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए जब सफलता प्राप्त करेंगे तभी परमात्मा से मिलन होगा।

जायसी सूफ़ी मत के अनुयायी थे। उनका 'पद्मावत' महाकाव्य सूफ़ीदर्शन का सुन्दर नमूना है। हिन्दुओं की एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना को कथावस्तु बनाकर उसमें सूफ़ी सिद्धांतों का विभिन्न रूपकों द्वारा अच्छा प्रतिपादन किया है। इस काव्य की भाषा अवधि है। अवधि भाषा का यही प्रथम महाकाव्य है। दोहा-छप्पयवाली शैली में रचित इस प्रेम-काव्य का हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

सूफ़ी मतानुसार यह समस्त विश्व एक रहस्यमय प्रेमसूत्र में गुँथा हुआ है, जिसके माध्यम से जीव ब्रह्म की उपलब्धि कर सकता है। प्रेम-मार्गी शाखा की अन्य कृतियों में कुतुबन की मृगावती, मंझन की मधुमालती, शेख नबी का ज्ञानदीप, उसमान की चित्रावली, नूर मुहम्मद की इंद्रावती तथा फ़ाजिलशाह कृत प्रेम-रतन उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त दोनों संप्रदायों ने निराकार एवं निर्गुण ईश्वर की उपासना पर जोर दिया है। उनका विश्वास है कि ईश्वर पत्थर और पहाड़ में नहीं हैं, बल्कि मनुष्य के हृदय में निवास करते हैं जिन्हें हम प्रेम व

ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। अनेक उदाहरणों द्वारा उन्होंने इस बात को समझाने का प्रयत्न किया है। मूर्तिपूजा की निस्सारता का उदाहरण 'सोमनाथ मंदिर की ध्वस्तता' इत्यादि के द्वारा भी प्रस्तुत किया है।

परंतु सगुणधारा के प्रवर्तकों तथा प्रतिनिधि कवियों का विश्वास है कि जब कभी अपने भक्तों पर विपत्ति आ पड़ती है उस समय परमात्मा अवतार लेकर उनकी रक्षा करते हैं। इसका प्रबल प्रमाण हमारे पुराण हैं। दशावतार भी इस कथन की पुष्टि करते है। गजेन्द्र-मोक्ष, प्रह्लादचरित तथा ध्रुवचरित भी इस बात की घोषणा करते हैं। किन्तु विष्णु के इन दशावतारों में रामावतार तथा कृष्णावतार अधिक श्रेष्ठ माने जाते हैं। रामभक्ति के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, तो कृष्णभक्ति के वल्लभाचार्य। इन दोनों आचार्यों ने राम और कृष्ण के अवतारों के रहस्यों तथा मानव के उत्थान में उनके पुण्य चरितों के स्मरण की आवश्यकता का अच्छा रिचय दिया और प्रचार भी किया।

रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित विशिष्टाद्वैत का प्रचार उनके शिष्यों ने देश-भर में किया। स्वामी रामानंदजी ने उत्तर में रामभक्ति का अच्छा प्रचार किया। तुलसीदास ने रामचन्द्रजी का लोकरक्षक रूप जनता के सामने रखा। धनुर्धर तथा मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र को शील, शक्ति एवं सौन्दर्य के प्रतीक के रूप में चित्रित किया और उनकी आराधना की। लोकधर्म की मर्यादा की परिधि के भीतर रहते हुए तुलसी ने उपास्य और उपासक के सूक्ष्म संबंध की जो गूढ़ व्यंजना की, वह अत्यंत मार्मिक है।

तुलसी ने रामचरित मानस' की रचना के ऐसे काव्य-नायक की सृष्टि की जो जन-जन के आदर्श बन गये। तुलसी समन्वयवादी थे और लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने काव्य का प्रणयन किया है।

तुलसी व्रज तथा अवधी भाषाओं के पारंगत विद्वान थे। उन्होंने उस समय तक प्रचलित पाँचों शैलियों में काव्य-रचना करके अपनी अद्भुत प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। तुलसी के राम एक कुशल एवं सफल शासक ही नहीं, अपितु वे आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहशील भ्राता, आदर्श पति, सखा, बंधु, मित्र, दुष्टों को दण्ड देनेवाले तथा शिष्ट जनों के रक्षक हैं।

तुलसी के अन्य काव्य-ग्रन्थों में विनयपत्रिका तथा कवितावली अत्यंत श्रेष्ठ हैं। इस शाखा के अन्य कवियों में नाभादास तथा हृदय-राम के नाम उल्लेखनीय हैं।

कृष्णभक्ति को काव्यत्मक रूप देनेवाले कवियों की संख्या बहुत बड़ी है। उनमें सूरदास का स्थान सर्वप्रथम माना जाता है। ये कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य के आदेशानुसार सूरदास ने भागवत का व्रजभाषा में 'सूरसागर' नाम से उल्था किया। परंतु यह एक स्वतंत्र काव्य का रूप ले चुका है। बालकृष्ण के वर्णन में सूर को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। सूर के कृष्ण मानव रूपधारी रमात्मा थे। बालक कृष्ण के मुंह में 'अखिल कोटि ब्रह्मांड की महिमा' दिखाकर उनकी अमानवीयता का परिचय कराया है। कंस-वध, गोपिका-क्रीड़ा, राम-लीला इत्यादि के द्वारा आत्मा और परमात्मा के संबन्धों का परिचय विभिन्न रूपकों तथा उपमाओं के माध्यम से देने का प्रयास किया है। कृष्ण का लोकरंजक रूप जिस कुशलता के साथ सूर ने प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत प्रशंसनीय है। 'भ्रमरगीत' सूर-सागर का मर्मस्पर्शी अंश है। सूर ने गीति-शैली में ही अपना काव्य रचा है। हिन्दी साहित्यरूपी गगन-मण्डल के ये सूर्य माने जाते हैं।

'सूर सूर, तुलसी ससि, उडुगन कशवदास' अथवा 'उत्तम पद कवि गंग के, कविता को बलबीर, केशव अर्थ गंभीर को, सूर तीन गुण धीर' वा 'तत्व तत्व सूरा कही' आदि उद्गारों के द्वारा सूर की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है।

इस परंपरा के अन्य कवियों में नंददास, गदाधर भट्ट, ध्रुवदास, स्वामी हरिदास, मदनमोहन, रसखान, मीराबाई आदि के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं। मीराबाई कृष्ण की सेवा में अपने आपको समर्पित कर उनके ध्यान में तन्मय रहीं, हँसते-हँसते उसने काला नाग एवं विष को भी वश में कर लिया; और उस साम्राज्य की निवासिनी बनी जहाँ शोक, ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट इत्यादि नहीं है।

कविवर रसखान का नाम भी कृष्णभक्ति-प्रधान साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ये मुसलमान होते हुए भी कृष्ण के अनन्य उपासक थे। अपना सर्वस्व छोड़कर ये कृष्ण के प्रेम में रंग गये और अंत में मथुरा जा बसे। इनकी भक्ति पर मुग्ध हो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था—

'इस मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिन्दू वारिये।'

अर्थात्, इन मुसलमान हरि-भक्त पर करोड़ों हिन्दुओं को न्योछावर कीजिये।

शृंगाररस एवं भक्ति-प्रधान रचनाएं करने में रसखान सिद्धहस्त थे। इनके काव्य-ग्रन्थ 'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका' हैं, जो भक्ति एवं प्रेम के सुन्दर नमूने हैं।

रहीम अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक थे। ये संस्कृत, प्राकृत, अरबी, फ़ारसी तथा व्रजभाषा के मर्मज्ञ विद्वान तथा सुकवि थे। इनके दोहे नीति के होते हैं। इनका सामाजिक अनुभव पर्याप्त गहरा था। ये दानी ऐसे थे कि कर्ण कहे जाते थे। इनकी कृतियों में 'बरवै नायिका भेद', 'रासपंचाध्यायी', 'शृंगार सोरठ', 'मदनाष्टक' आदि उत्कृष्ट मानी जाती हैं।

इस युग के अन्य कवियों में वृन्द, मलूकदास, पलटू साहब, दरिया साहब आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रीतिकाल—(वि. सं. 1701 से 1900 तक)

प्रत्येक भाषा में पहले लक्ष्य-ग्रन्थों की रचना होती है, तत्पश्चात् लक्षण-ग्रन्थों की। हिन्दी इसका अपवाद नहीं है। काव्यों के लक्षण,

तत्व, गुण, अलंकार प्रकार आदि के सम्बन्ध में लक्षण प्रस्तुत करना ही रीति-काव्यों का उद्देश्य है। रस, छन्द, अलंकार, नायिका-भेद, नखशिख-वर्णन, ध्वनि इत्यादि रीति-ग्रन्थों के प्रमुख वर्ण्य विषय हैं। भक्तिकाल में हिन्दी-काव्य चरम उत्कर्ष तक पहुँच चुका था। अतः रीतिकाव्य के रचयिता कवि बनने की अपेक्षा आचार्य बनने की अभिलाषा रखते थे। वे अपनी प्रतिभा एवं पांडित्य के प्रदर्शन के इच्छुक थे। तत्कालीन परिस्थितियों ने भी उन लोगों का साथ दिया। फिर क्या था, विलासप्रिय बादशाहों, राजाओं तथा नवाबों के आश्रय में शृंगारिक और कल्पना-प्रधान साहित्य का सृजन होने लगा। यों तो रीतिकाव्य का निर्माण रीतिकाल से पूर्व ही होने लगा था, परंतु आचार्य केशवदास ने उसे एक समग्र रूप दिया। वे एक उच्च कोटि के आचार्य एवं कवि थे। उनकी धाक उस युग में ऐसी जमी थी कि उनकी समता कर सकनेवाले आचार्य कम थे।

आचार्य केशवदास ने काव्य की आत्मा अलंकार को माना और अपने सिद्धांतों के प्रतिपादन के हेतु आपने 'काव्य-प्रिया' तथा 'रसिक-प्रिया' की रचना की। उनका काव्य 'रामचन्द्रिका' हिन्दी का एक उत्तम प्रबंध काव्य माना जाता है। विषय की दृष्टि से यह काव्य राम काव्य-परंपरा में जाता है, किन्तु वर्णन शैली की दृष्टि से रीतिकाव्य की परंपरा का मानना पड़ता है।

आचार्य केशवदास ने रीतिकाव्य की जो परंपरा चलायी, वह बाद के आचार्यों द्वारा मान्य नहीं हुई। चिन्तामणि ने रस को काव्य की आत्मा मानते हुए एक नयीं परंपरा स्थापित की। वह परंपरा सर्वमान्य होने के कारण हिन्दी के विद्वानों ने चिन्तामणि को ही रीतिकाल का प्रवर्तक माना। उन्होंनें 'काव्य-विवेक', 'कविकुल कल्पतरु' तथा 'काव्य-प्रकाश' की रचना करके रीति-ग्रन्थों की नयी प्रणाली प्रचलित कर दी। फिर क्या था, उनकी देखा-देखी रीतिकाव्यों की बाढ़-सी आ गयी। परिणामस्वरूप कविता की स्वतंत्र धारा कुंठित हो गयी। चिन्तामणि की परिपाटी के अनुसार दोहों में रस और अलंकारों की परिभाषा लिखी जाती थी और

कवित्त तथा सवैयों में उनके उदाहरण प्रस्तुत किये जाते थे। इस युग में नायिका-भेद, षड्ऋतु-वर्णन, बारहमासा, नख-शिख-वर्णन की प्रधानता थीं। वर्ण्य विषय में अश्लीलता ने विशेष स्थान लेना प्रारंभ किया था। राधाकृष्ण को नायक-नायिका बनाकर आचार्यों ने अश्लीलता की हद कर दी है।

रीतिकाल के अन्य कवियों में बिहारी, मतिराम, जसवंतसिंह, भूषण, देव, पद्माकर, गंग, सेनापति आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इस युग में पुनः कवियों को दरबारों में प्रवेश प्राप्त हो गया था। उनके आश्रयदाता भोग-विलास में मग्न थे। अतः मनोरंजन तथा वासना को उद्दीप्त करनेवाली रचनाएँ प्रस्तुत करने के लिए कवि बाध्य से हो गये थे। कोई-कोई शासक भोग-विलास में यहाँ तक लिप्त थे कि राज-काज तक को भूल से गये थे। कहा जाता है कि जयपुर के राजा जयसिंह को महाकवि बिहारीलाल ने राज-काज में पुनः प्रवृत्त किया था, अपने एक दोहे के द्वारा। उन्होंने सुख-भोग में निमग्न राजा की सेवा में निम्न-लिखित दोहा लिख भेजा था।

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिकाल।
अलि कलि ही सों बंध्यो, आगे कौन हवाल॥"

अप्राप्त यौवना बाला के प्रेम में पागल राजा को इस दोहे ने जागरूक बनाया था। बिहारी के दोहे मार्मिक होते हैं। उन दोहों की प्रशस्ति में किसी कवि ने लिखा है—

"सतसैया के दोहरे, अरु नावक के तीर।
देखन में छोटे लगै, घाव करै गंभीर।"

बिहारी की कविता में विविधता है, विदग्धता है, और रसवाहिनी भी निक्षिप्त है। रस-व्यंजना तथा कलात्मकता की दृष्टि से बिहारी के दोहे बेजोड़ हैं। उनके दोहे श्लेषार्थ की दृष्टि से भी अनुपम हैं।

देव भी बिहारी जैसे प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी प्रतिभा विभिन्न काव्यों में बँटी प्रतीत होती है। दर्जनों काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन कर कवि देव ने भी हिन्दी के काव्य-साहित्य में अपनी धाक जमायी है।

भूषण ने शृंगार के स्थान पर वीररस को ग्रहण किया है। उनका दृष्टिकोण हिन्दू नरेशों में जागृति की लहर ैदा कर देश को स्वतंत्र बनाना रहा था। वे वीरता और शौर्य के उपासक रहे थे। उनकी भाषा फड़कती हुई, ओजगुण को लिये हुए है। 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी', 'छत्रसाल दसक' इत्यादि भूषण के काव्य-ग्रन्थ हैं। इनमें 'शिवराज-भूषण' अलंकारों का प्रतिपादन करनेवाला रीति-ग्रन्थ है।

पद्माकर रीतिकाल के विशिष्ट कवियों में से हैं। अनेक दरबारों में जाकर पद्माकर ने अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया और उन राजाओं से पर्याप्त सम्मान पाया। सतारा के शासक रघुनाथ राव ने इन्हें एक लाख रुपये का नक़द तथा एक हाथी भेंट में दिया था ऐसा कहा जाता है। रस-निरूपण तथा कल्पना के साथ भावुकता के सम्मिश्रण में ये अपनी सानी नहीं रखते। अनुप्रास, यमक और श्लेष-प्रधान काव्य की रचना में भी ये निपुण थे। इनके काव्य-ग्रन्थों में 'जगद्विनोद', 'प्रबोध पचासा' तथा गंगा लहरी' अधिक लोकप्रिय हैं।

घनानंद भी इस युग के एक प्रतिभाशाली कवि थे। ये सुजान नामक वेश्या पर आसक्त थे। बाद को इनका पार्थिव प्रेम पारमार्थिक प्रेम में परिणत हो गया। विशुद्ध परिमार्जित भाषा में काव्य-रचना करके घनानन्द अमर हो गये हैं।

शृंगार रस-प्रधान रचना करनेवालों में घनानंद की भाँति आलम का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इनकी रचनाएँ 'आलम केलि' नाम से संगृहीत हैं।

इस युग में प्रधानतः रीति-ग्रन्थों की रचना हुई, किन्तु कुछ कवियों ने युग की प्रवृत्ति के विपरीत स्वतंत्र रचनाएं भी की जो शृंगार और भक्ति

प्रधान हैं। लेकिन इस युग में रीति-ग्रन्थों की प्रमुखता रही। अतः यह युग रीतिकाल नाम से विख्यात हुआ है।

इस युग के काव्यों की भाषा मुख्यतः व्रजभाषा थी; किन्तु कतिपय कृतियों में अवधी और राजस्थानी का भी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

भावपक्ष की अपेक्षा इस युग के काव्यों में कला-पक्ष का अधिक विकास हुआ है। भषा और भावों में मृदुता, प्रौढ़ता एवं परिपक्वता इस युग की अन्य विशेषताएँ हैं। कल्पना की ऊँची उड़ान भरने में इस युग के कवियों को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। इस दृष्टि से यह युग अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

उर्दू धारा

मेरठ और दिल्ली के आसपास उर्दू और खड़ीबोली दोनों का प्रायः एक साथ उद्गम हुआ है। प्रारंभिक अवस्था में उर्दू और खड़ीबोली में कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं देता है। मुसलमानों के आगमन के कारण दैनिक व्यवहार के लिए जो बाज़ारू भाषा प्रचलित हुई वह उर्दू कहलायी। परंतु क्रमशः उर्दू, अरबी और फारसी से अधिक प्रभावित होती गयी और खड़ीबोली संस्कृत से। परिणामस्वरूप इन भाषाओं में अंतर भी बढ़ता गया। वैसे मूल रूप से ये दोनों एक भाषा की दो शैलियाँ कही जा सकती हैं। परंतु व्यवहार में शब्दों, छंदों, प्रतीकों तथा उपमानों में फ़र्क़ साफ़ दिखाई देता है। खड़ीबोली में भारतीय परंपराओं के अनुरूप कथावस्तु ग्रहण की गयी है, तो उर्दू में अरब, फारस आदि देशों की मान्यताओं को प्रधान माना गया है।

उर्दू और खड़ीबोली के जन्मदाता अमीर खुसरो दोनों भाषाओं तथा संप्रदायों के समन्वयवादी कवि थे। उनके पिता मुसलमान थे और उनकी माँ हिन्दू थी। अतः उनके जन्म-धारण में भी दोनों धर्मों का समन्वय पाया गया है।

उर्दू की परंपरा अकबर और शाहजहाँ के शासनकाल में जोर पकड़ने लगी, जो दक्षिण में निज़ाम के आश्रय में खूब विकसित हुई। हैदराबाद की उर्दू दक्खिनी के नाम से लोकप्रिय हुई। उत्तर की उर्दू का रूप बहुत कुछ उसीसे मिलता-जुलता है। वली औरंगाबादी दक्षिण के मशहूर शायर थे। उस समय दिल्ली में 'मीर', 'सौदा', 'दर्द', आदि ने उर्दू कविता के क्षेत्र में अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

'नज़ीर' एक ऐसे शायर थे जिनके आगमन से उर्दू शायरी का मैदान अत्यंत विशाल हो गया। उन्होंने मुहम्मद पर शायरी की, तो कुँवर कन्हैया का स्मरण भी किया है। धार्मिक समत्व का भाव उनका गुण था।

दिल्ली में मुसलमानी साम्राज्य का सितारा डूब गया, तो उर्दू शायरी का केन्द्र लखनऊ बना। लखनऊ के नवाबों ने उर्दू कवियों का दिल खोलकर स्वागत किया। 'सौदा' और 'मीर' लखनऊ पहुँचे। लखनऊ केन्द्र के दूसरे शायरों में 'मुसहफ़ी' और 'इन्शा' के नाम आदर के साथ लिये जाते हैं।

उर्दू शायरी को लोकप्रिय बनाने का श्रेय 'गालिब,' 'मोमिन' 'जौक', 'आतिश' और 'नासिख' को दिया जा सकता है।

आज़ाद और हाली के आगमन से उर्दू कविता के क्षेत्र में नया दौर शुरू होता है। इन लोगों ने उर्दू शायरी की पुरानी परिपाटी को छोड़कर कुदरत और देशभक्ति को प्रधानता दी। अकबर, इकबाल और चकबस्त ने तो नयी परिपाटी का अनुसरण करके उर्दू कविता में जान फूँक दी।

राष्ट्रीयता के साथ प्रगतिशील भावनाओं को अपनी शायरी में ध्वनित करने का प्रयास उर्दू के शायरों ने किया। जोश मलीहाबादी, फैज़, अख़तर शीरानी, फ़िराक सरदार जाफ़री, सागर निज़ामी, मजाज आदि उर्दू के प्रगतिशील शायरों में गिने जा सकते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि युग के अनुरूप तथा बदलती मान्यताओं के अनुसार उर्दू की शायरी ने भी अपना ढाँचा बदल लिया और यथासमय जनता की विचारधारा के निकट आने लगी।

आज की उर्दू कविता में पुरानी फ़ारसी, अरबी और तुर्की शब्दों को बलात् बिठाकर उसे मुश्किल बनाने की प्रवृत्ति कम दिखाई देती है। भाषा को सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न पाया जाता है। इस तरह उर्दू की कविता की धारा खड़ीबोली कविता की धारा के निकट आ रही है। ये दोनों धाराएँ समानांतर में प्रवहित होते हुए भी एक दूसरी से मिलने के लिए लालायित दीखती हैं। भविष्य में भाषा की दीवार हटकर दोनों धाराएँ एक होकर बहने लगे, तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। तब उर्दू और खड़ी बोली की भिन्न शैलियाँ एकमात्र सामान्य हिन्दी की शैली का रूप ग्रहण कर सर्वमान्य होंगी।

आधुनिक काल

हिन्दी में आधुनिक युग का शुभारंभ वि. सं. 1900 से माना जाता है। यह समय हिन्दुस्तान के इतिहास में राजनैतिक उथल-पुथल का था। स्वदेश-प्रेम की भावना जनता में जागृत होने लगी थी, स्वभाषा के प्रति अनुराग उत्पन्न होने लगा था। प्रायः इसी समय बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हुआ। भारतेन्दु ने गद्य में खड़ीबोली का अवश्य प्रयोग किया, किन्तु काव्य की रचना के लिए उन्होंने व्रजभाषा को ही अधिक उपयुक्त समझा। व्रजभाषा की कोमल-कांत पदावली, मधुरिमा एवं लालित्य से वे अधिक प्रभावित थे। फिर भी खड़ी बोली में भी कविता करके उन्होंने भावी पथ का निर्देश किया है। युगांतरकारी कवि तथा खड़ीबोली साहित्य की विविध विधाओं के जनक के रूप में भारतेन्दु हमारे सामने आते हैं। यद्यपि कतिपय समीक्षक खड़ी बोली कविता के जन्मदाता श्रीधर पाठक को मानते हैं, परन्तु भारतेन्दु ने ही सर्वप्रथम खड़ीबोली में कविता का सूत्रपात किया था। उनकी कविता राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। अंग्रेज राज्य अपनी सुव्यवस्था के लिए नामी था। तो भी उसकी तरफ़ से हमारा जो शोषण हो रहा था, उसके प्रति भारतेन्दु ने क्षोभ प्रकट किया है।

'भारत-दुर्दशा' में इस शोषण की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने जो उद्‌गार अभिव्यक्त किये हैं, वे उनकी अनुपम देशभक्ति के परिचायक हैं। उसकी थोड़ी बानगी लीजिये :—

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी
ताहू पै महंगी काल रोग विस्तारी
दिन दिन दूने दुख ईस देत।
हा! हा! री सबके ऊपर टिक्कस की आफ़त आई
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई
रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई…

भारतेन्दु के बाद द्विवेदीजी के आगमन से लेकर खड़ीबोली की कविता-लता लहलहा उठी। उसमें गहरी हरीतिमा, कोमलता तथा रस की माधुरी के कुसुम खिलने लगे। किन्तु द्विवेदीजी के पूर्व ही श्रीधर पाठक ने सर्वप्रथम खड़ीबोली की रमणीयता तथा लालित्य का परिचय दिया है: अंग्रेज़ी भाषा के सुविख्यात कवि गोल्डस्मिथ के काव्यों का 'ऊजड़ गाँव' तथा 'एकांतवासी योगी' नाम से हिन्दी रूपांतर किया है। उनके मुक्तक गीतों में राष्ट्रीय स्वर मुखरित हुआ है। प्रकृति-चित्रण में पाठकजी ने अपने काव्य-कौशल का अच्छा परिचय दिया है।

खड़ीबोली में कविता करने के उपयुक्त सरलता तथा सौंदर्य की सृष्टि करने का श्रेय 'पाठक' को ही दिया जा सकता है। पाठकजी ने खड़ीबोली में कविता करने का मार्ग प्रशस्त किया, फिर उस पथ को समस्त गुणों से संपन्न बनाने का कार्य आचार्य द्विवेदीजी ने किया।

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ीबोली में कविता करने की परिपाटी चलायी। भाषा और शैली का संस्करण भी किया, छंदों को जन्म दिया और कविता के लक्षणों के पालन करने पर भी ज़ोर दिया।

यद्यपि इस युग के काव्य की कथावस्तु प्राय: इतिवृत्तात्मक ही थी, फिर भी काव्य के समस्त प्राचीन संप्रदायों का अनुसरण उसमें अवश्य हुआ है।

पं० द्विवेदीजी ने स्वयं भी कविता लिखी, साथ ही उन्होंने अन्य कवियों की कविताओं का संशोधन कर काव्य के आदर्शों से नवोदित कवियों को अवगत कराया। अत: वे आचार्य भी हुए और युगप्रवर्तक भी। वस्तुत: द्विवेदी जी की प्रेरणा से ही अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', बाबू मैथिलीशरण गुप्त आदि यशस्वी कवि हिन्दी काव्य-क्षेत्र के प्रकाश में आये। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने सर्वप्रथम संस्कृत के वर्णवृत्तों में अधिकारपूर्वक कविता करके यह सिद्ध किया कि खड़ीबोली में सुन्दर कविता की जा सकती है। यही नहीं, आपने खड़ीबोली के विविध रूपों का परिचय कविता के माध्यम से कराया है। जैसे संस्कृत के तत्सम शब्द-बहुल कविता की बानगी लीजिये—

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय-कलिका राकेन्दु-बिम्बानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीडाकला पुत्तली।।

इसी भाँति 'हरिऔध' ने ठेठ हिन्दी में 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' लिखकर यह साबित किया है कि संस्कृत भाषा के संपर्क के बिना विशुद्ध हिन्दी में कविता की जा सकती है। वर्णवृत्तों में 'प्रिय प्रवास' की रचना करके हरिऔध ने खड़ीबोली में महाकाव्य की परंपरा चलायी।
'वैदेही वनवास' और 'रस कलश' आपके अन्य काव्य-ग्रन्थ हैं।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने परिणाम एवं उत्तमता की दृष्टि से खड़ी-बोली काव्य साहित्य का विस्तार किया। गुप्तजी की कविता में सारल्य के साथ माधुर्य का, प्राचीन आदर्शों के साथ नवीन आदर्शों का तथा देशप्रेम के साथ भारतीय संस्कृति का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। 'भारत-भारती' का सृजन करके गुप्तजी ने न केवल अपना देशप्रेम अभिव्यक्त

किया है, अपितु हिन्दी पाठकों में नवीन जागृति पैदा की है। 'साकेत' महाकाव्य की सृष्टि कर उपेक्षिता ऊर्मिला तथा दृढ़ सेवाव्रती लक्ष्मण के आदर्श चरित्रों के महत्व का परिचय भी दिया है। गुप्तजी के राम अवतारपुरुष नहीं, आदर्श मानव हैं। वे इस भूतल को स्वर्ग बनाने के हेतु अवतरित हुए हैं। 'जय भारत' आपका एक और महाकाव्य है। पंचवटी, जयद्रथ-वध आदि आपके उत्तम खण्डकाव्य हैं।

नारी के प्रति गुप्तजी के हृदय में अगाध सहानुभूति एवं आदर की भावना थी। यशोधरा, ऊर्मिला, सीता इत्यादि उत्तम पात्रों के माध्यम से आपने नारी की गरिमामयी महानता का परिचय दिया है। खड़ीबोली को सरल एवं सरस बनाने में गुप्तजी की लेखनी सफल रही है।

इस युग के अन्य कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी और पं० रामनरेश त्रिपाठी के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं। इन दोनों की कविता में राष्ट्रीयता एवं नवीनता के दर्शन होते हैं। इनके क्रमशः 'हिमतरंगिनी' एवं 'पथिक' इसके सुन्दर नमूने हैं। इन दोनों की काव्य-वस्तु में नवीनता और विलक्षणता के साथ भावी युग की प्रवृत्तियों की झाँकी भी मिल जाती है। द्विवेदी युग के अन्य कवियों में सर्वश्री रामचरित उपाध्याय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', मन्नन द्विवेदी और रूपनारायण पांडेय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

छायावाद और रहस्यवाद—इतिवत्तात्मक कविता के विरुद्ध काव्य के क्षेत्र में जो क्रांति हुई, वही छायावादी और रहस्यवादी कविता के नाम से व्यवहृत हुई। छायावाद एक नया प्रयोग है और साथ ही वह एक विशिष्ट काव्यगत शैली भी है। प्रथम महासंग्राम के पश्चात् कवि ने युद्ध की विभीषिका को देख यह अनुभव किया कि मानव की सत्ता अत्यल्प है, उसे कोई अज्ञात सत्ता ही संचालित करती है। अत: कवि प्रकृति में उस अव्यक्त सत्ता का अन्वेषण करने लगा। उस वक्त उसे यह प्रतीत हुआ कि जड़ और चेतन में अंतर अथवा विभाजन-रेखा कोई नहीं है।

प्रकृति के प्रत्येक उपकरण को कवि ने सजातीय मानकर आत्मीयता का भाव जोड़ा। कवि यहाँ समिष्टिगत समस्याओं का विस्मरण कर व्यष्टि के सुख-दुखों के चित्रण में तन्मय रहने लगा और प्रकृति में भी अपनी हृदयगत भावनाओं का आरोप कर उसे भी समभागी मानने लगा। इस प्रकार कवि की वैयक्तिक मानसिक दशा की छाया प्रकृति के उपकरणों में भी प्रतिबिम्बित होने लगी। यही कारण है कि गुलाब का फूल छायावादी कवि की दृष्टि में साधारण फूल मात्र न रहकर यौवन प्रतीक बन जाता है, जुही की कली सुहाग से भरी नायिका बन जाती है।

छायावादी कवि लोकमानस का विचार किये बिना अपने मनोगत भावों का स्वच्छंदतापूर्वक प्रकाशन करता है। वयक्तिक प्रेमानुभूति, रहस्यात्मकता, भाषा और शैली में सौंदर्य चित्रण, मौलिक प्रयोगशीलता, मूर्त वस्तु की अमूर्त वस्तु से तुलना, भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों की अधिकता, सुन्दर शब्द-चित्रण, छन्दों की स्वच्छन्दता आदि इसकी विशेषताएं हैं। छायावाद भावना-प्रधान है। छायावादी कवि स्थूल जगत में सूक्ष्म भावनाओं की छाया देखता है और उसमें आध्यत्मिकता का आरोप करता है। कविवर प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा छायावाद तथा रहस्यवाद के प्रतिनिधि माने जाते हैं। कवि प्रकृति के व्यापारों के नर्तन को देख चकित होता है और उसमें निमंत्रण का संकेत पाता है। पंतजी के शब्दों में सुनिये—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व की पलकों में सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन!

'छाया' नामक कविता में पंतजी ने प्राकृतिक उपकरणों में मानवीय भावों का आरोप कर उनके साथ आत्मीयता जोड़ दी है। छाया जैसी

अमूर्त वस्तु में मूर्त रूप का आरोप करके कवि उससे वार्तालाप करने लगता है—

> "कौन कौन तुम परहितवसना
> म्लानमना भूपतिता-सी....

महाप्राण निराला ने संध्या को एक नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि की दृष्टि में संध्या एक मानवी ही नहीं, बल्कि परी है—

> दिवसावसान का समय,
> मेघमय आसमान से उतर रही है,
> वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
> धीरे-धीरे धीरे
>
> मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर
> किन्तु जरा गम्भीर—नहीं हैं उनमें हास-विलास।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद में वासना की गंध के बदले विशुद्ध सौंदर्य का विराटरूप देखने को मिलता है।

निरालाजी पर भारतीय दर्शन की गहरी छाप परिलक्षित होती है। 'आत्मा और परमात्मा' की अभिन्नता का निराला ने 'तुम और मैं' नामक कविता में स्पष्ट परिचय दिया है। निरालाजी ने हृदय की अनुभूतियों के व्यक्तीकरण में छन्दों को बाधक माना। अतः उन्होंने ही सर्वप्रथम छन्दों के बन्धनों को तोड़ मुक्तक कविता लिखी।

प्रसादजी के 'आँसू' काव्य में उनकी वैयक्तिक प्रेमानुभूति की छाया स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हुई है। उनकी निजी वेदना अंत में व्यापक होकर विश्व वेदना में परिवर्तित हो गयी है। कवि ने अपनी अनुभूतियों को रहस्यात्मक शैली में अभिव्यक्त किया है। यह सूफ़ीवाद के प्रभाव का

परिणाम कहा जा सकता है। प्रसाद की 'कामायनी' अभिव्यंजना की दृष्टि से एक सफल महाकाव्य मानी जा सकती है।

छायावादी और रहस्यवादी कवियों पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का प्रभाव भी पड़ा है। यद्यपि प्रकृति में अज्ञात सत्ता का अन्वेषण भारतीय वाङ्मय के लिए नयी वस्तु नहीं है, फिर भी इस युग के कवियों ने पश्चिम से ही इसकी प्रेरणा प्राप्त की।

छायावादी कवि जब प्रकृति में रहस्यमय सत्ता की झलक मात्र देखता है तब वह अपनी क्षुद्रता का ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है। अतः वह उस विराट सत्ता को जिज्ञासा भरी वाणी में संबोधित कर उसकी महानता एवं व्यापकता को स्वीकार करने लगता। प्रसाद के शब्दों में सुनिये—

हे विराट! हे विश्वदेव!
तुम कुछ हो, ऐसा होता भान!

पंतजी प्रकृति में साकार सौन्दर्य को देख उसे गले लगाने मात्र से संतुष्ट नहीं होते, अपितु उस अनंत में स्वयं विलीन हो जाने की अभिलाषा भी रखते हैं। छाया नामक कविता के अंत में वे कह उठते हैं—

हाँ सखि, आओ बाँह खोल हम
लगकर गले, जुड़ा लें प्राण!
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान!

महादेवी अज्ञात सत्ता से दूर रहकर अपने अस्तित्व को बनाये रखते हुए उसकी आराधना प्राणों का दीप जलाकर करना चाहती हैं। वे अपने प्राणरूपी दीपक को संबोधित कर कहती हैं—

मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग-युग प्रति दिन प्रति क्षण प्रति पल
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

लेकिन फिर वे स्वयं उसमें लय होने को भी व्याकुल होती हैं। वे कहती हैं—

बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

वे प्रियतम परमात्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव करने लगती हैं। इस तरह उनकी कविता रहस्यवाद का सुन्दर नमूना है।

प्रसाद और निराला ने जहाँ छायावादी कविता को भाषा, भाव और अभिव्यक्तीकरण की दृष्टि से भी प्रौढ़ता प्रदान कीं, वहाँ पंत और महादेवीजी ने उसे सुकुमारता, प्रांजलता तथा गेयात्मकता प्रदान की है।

डॉ. रामकुमार वर्मा की कविता में तो छायावाद की अपेक्षा रहस्यवाद अधिक दिखाई देता है। रहस्य-चेतना, उत्कट रूपलिप्सा, असीम के प्रति संदेहात्मक जिज्ञासा आदि उनकी कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उनकी 'चित्रलेखा' में रहस्यवादी कविता के नमूने व आदर्श देखे जा सकते हैं।

राष्ट्रीयवाद—छायावादी युग में कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जो इस युग के काव्यादर्शों से दूर रहे। ऐसे कवियों में सर्वश्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त', सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि मुख्य हैं। गुरुभक्तसिंह की कविता में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता है, फिर भी उसमें भावात्मकता का भी समन्वय पाया जाता है। प्रकृति-चित्रण का जैसा मर्मस्पर्शी चित्रण उनके 'नूरजहाँ' नामक प्रबन्ध काव्य में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। माखनलालजी में युग की राजनैतिक चेतना का स्वर अधिक मुखरित हुआ है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' राष्ट्रदेवता के पुजारी रहे हैं। ये कवि अज्ञात सत्ता की खोज में वास्तविक जगत का विस्मरण नहीं कर सके। अत: उन्होंने यथार्थ जगत की समस्याओं तथा गुलामी के अभिशाप विषय में विद्रोही स्वर सुनाये हैं और देश की जनता में राष्ट्रीय जागृति पैदा करने का सफल

प्रयत्न किया है। इस परंपरा में हिमतरंगिनी, हिमकिरीटिनी, झाँसी की रानी, क्वासि तथा अपलक आदि काव्य स्मरणीय हैं।

राष्ट्रीय काव्य-धारा को गति देनेवालों में सर्वश्री रामधारी सिंह 'दिनकर', मोहनलाल महतो 'वियोगी', सोहनलाल द्विवेदी, श्यामनारायण पांडेय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। दिनकरजी की कविता में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल है। देशवासियों में देशप्रेम व स्वतंत्रता की भूख जागृत करने में उनकी कविता अधिक सफल सिद्ध हुई है। चलो दिल्ली, सुभाष के प्रति, हिमालय के प्रति आदि उनकी फुटकल कविताओं में ही नहीं, अपितु रश्मिरथी तथा कुरुक्षेत्र आदि काव्यों में भी राष्ट्रीय स्वर मुखरित हुआ है। साथ ही क्रांति एवं नवनिर्माण की उत्कट अभिलाषा भी उनकी कविता में ध्वनित होती है। उन्होंने देश के अतीत गौरवमय इतिहास के खण्डहरों को देखकर दुख प्रकट किया है, वे विश्वमानवता की स्थापना के आकांक्षी हैं। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पर उनका प्रगाढ़ विश्वास है। वे कोरे भौतिकवाद के पक्षपाती नहीं हैं, बल्कि भौतिकवाद में आध्यात्मिकता का समन्वय चाहते हैं।

माखनलालजी की कविता में सर्वत्र राष्ट्र को स्वतंत्र बनाने के लिए उत्सर्ग की पुकार सुनाई देती है। आपकी दृष्टि में राष्ट्र-सेवा तथा साहित्य-सेवा भिन्न नहीं हैं। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एक उच्च कोटि के देशभक्त कवि हैं। आप वर्तमान समाज में आमूल परिवर्तन लाने का स्वप्न देखते थे। कभी-कभी वे विक्षुब्ध हो इस दलित एवं कुत्सित समाज को जलाकर उसके स्थान पर नये समाज की रचना करने की इच्छा भी प्रकट करते थे।

हालावाद—रुग्ण समाज को स्वस्थ बनाने का संकल्प लिए कविवर बच्चन काव्य साहित्य के मैदान में उतरे। उनके आदर्शों एवं आशयों का प्रारंभ में हिन्दी जगत ने स्वागत नहीं किया। क्रांतदर्शी कवि की दूरदृष्टि को सहानुभूति के साथ समझने का प्रयत्न हिन्दी पाठक समाज ने तथा

आलोचक वर्ग ने नहीं किया। परंपरागत विचारों के प्रति अपना असंतोष व्यक्त करते हुए कविवर 'बच्चन' ने समाज के नवनिर्माण के लिए कविता के माध्यम से नया उत्तेजन प्रदान करनेवाला एक टानिक दिया अपने 'हालावाद' के द्‌वारा। बच्चनजी के हालावाद का आदर्श है—

भावुकता अंगूर लता से
खींच कल्पना की हाला,
कवि बनकर है साक़ी आया
भरकर कविता का प्याला।

कवि की हृदयगत अनुभूतियाँ ही उनकी कविता की हाला है। वे अनुभूतियाँ नित नवीन तथा पूर्ण हैं। इसलिए कवि कहते हैं—

कभी न क्षण-भर खाली होगा,
लाख पिएं, दो लाख पिएँ।
पाठकगण हैं पींनेवाले,
पुस्तक मेरी मधुशाला ।।

बच्चनजी की मधुशाला का आदर्श है—

पंडित, मोमिन, पादरियों के
फंदों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसीका
स्वागत मेरी मधुशाला।

आख़िर अपनी कविता के उच्च आदर्शों का परिचय देते हुए कवि कहते हैं—

लड़वाते हैं मंदिर-मसजिद
मेल करातो मधुशाला।

बच्चनजी अपनी कविता के साथ एक नये आदर्श को ले आये। यद्‌यपि युग-परिवर्तन के साथ उनका स्वर भी बदलता गया, फिर भी हालावाद की सृष्टि ने हिन्दी काव्य-धारा को गति ही नहीं दी, एक उपधारा

का भी सूत्रपात किया। मगर, खेद है कि इस धारा को अधिक गहरी एवं व्यापक बनाकर आगे ले जानेवाला कवि अब तक पैदा न हुआ है।

प्रगतिवाद—छायावाद इतिवृत्तात्मकता के प्रति हुए विद्रोह का परिणाम है, तो प्रगतिवाद सूक्ष्म अथवा अंतरजगत के प्रति हुए असंतोष एवं विद्रोह का परिणाम है। छायावादी कवियों ने स्थूल जगत की उपेक्षा कर सूक्ष्म की उपासना की। उनका मत है कि स्थूल जगत अंतरजगत का प्रतिबिम्ब मात्र है। परन्तु प्रगतिवादियों की मान्यता है कि बाह्य जगत की छाया ही अंतरजगत है, याने स्थूल जगत का प्रतिबिम्ब सूक्ष्म जगत है। देह पर जो बीतता है, उसका प्रभाव मन पर पड़े बिना नहीं रह सकता। अतः जहाँ छायावादी कवि व्यक्ति के सुख-दुखों को लेकर चला, वहाँ प्रगतिवादी समष्टिगत समस्याओं को लेकर।

प्रगति जीवन का लक्षण है। प्रगति के बिना मानवजीवन निष्क्रिय हो जाएगा। किन्तु हिन्दी काव्य में प्रगति नाम से जो वाद चल पड़ा, वह काव्य की कतिपय प्रवृत्तियों को लेकर ही। काव्य की वस्तु, शैली, छन्द, भाषा, जीवन तथा जगत के प्रति प्रगतिवादी कवि के दृष्टिकोण में जो आदर्श प्रस्तुत हुए, उनमें तथा छायावाद के आदर्शों में भिन्नता है।

छायावादी कवि कल्पना की उड़ान भरने लगा, उसने वैयक्तिक प्रेमानुभूति तथा सौंदर्य की आराधना को अपना आदर्श माना। समाज की आर्थिक विषमता, अंधविश्वास, राजनैतिक गति-विधि इत्यादि के प्रति उपेक्षा दिखायी। प्रगतिवादी कवि आर्थिक समानता का पक्षपाती है। मार्क्स के सिद्धांतों के प्रभाव से जो विश्वव्यापी परिवर्तन संसार की अर्थनीति, राजनीति एवं सामाजिक मान्यताओं में हुआ, उसका प्रभाव साहित्य पर पड़ना स्वभाविक था। अतः प्रगतिवादियों का आदर्श हुआ — 'भूखे भजन न होय गुपाला।' उनका यह भी मत था कि स्वस्थ समाज में ही स्वस्थ साहित्य का सृजन संभव है। अतः कम्यूनिज़म अथवा साम्यवाद के जन्म एवं प्रचार के कारण जगत और जीवन को देखने तथा समझने के

दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ हो, और साथ ही सामाजिक निर्माण में भी आमूल परिवर्तन लाने का प्रयत्न हुआ। ऐसी दशा में प्रगतिवादी कवि ने जीवन और जगत के विश्लेषण में भौतिकवाद को अपनाया। समाज में परिवर्तन लाना उसका उद्देश्य बना और उसका माध्यम कविता बनी। अतः प्रगतिवादी कवि ने समाज की कुरूपता का नग्न चित्रण करने में भी संकोच नहीं किया। वास्तव में मानव समाज की उन्नति में अंधविश्वास, आर्थिक-विषमता, गुलामी, बेकारी आदि समस्याएं बाधक थीं, उन्हें दूर करना आवश्यक था। इसी कारण से छायावादी काव्य-परंपरा के प्रतिक्रियास्वरूप प्रगतिवाद का आविर्भाव हुआ।

प्रगतिवादी कवियों ने पुरानी काव्य-परंपरा एवं संप्रदायों को तिलांजलि देकर नयी मान्यताएँ स्थापित कीं। छन्दों के बन्धनों को तोड़ दिया, कृषक, मजदूर, भिखारी को भी काव्य का नायक बनाया। जनता की भाषा में काव्य-रचना होने लगी। स्पष्टता एवं सरलता का ध्यान अधिक रखा गया।

इस नये वाद के जन्मदाता महाप्राण 'निराला' तथा कविवर 'पंत' हैं। निराला ने भिक्षुक एवं मजदूरिन को काव्य-वस्तु बनाकर मुक्तक छन्द में कविता की, उनकी 'कुकुरमुत्ता' पूँजीवादी समाज और दलित वर्ग की यथार्थ स्थिति का प्रतीक है। सुमित्रानंदन पंत जैसे सौंदर्यप्रिय एवं कोमलता के पुजारी कवि ने भी समाज की कुरूपता को दग्ध करके उसके स्थान पर नव-निर्माण करने की आकांक्षा व्यक्त की—

गा कोकिल, बरसा पावक कण,
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन
पावक पग धर आये नूतन!

—यही उनका आदर्श है।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अपनी 'महानाश की भट्टी' नामक कविता द्वारा यह बताते हैं कि संसार में अन्याय, पाखण्ड, दंभ, कायरता इत्यादि का राज्य व्याप्त है। अतः वे महानाश का आवाहन करते हैं

ताकि उसके पश्चात् नव-निर्माण हो सके और 'विप्लव गायन' द्वारा समाज में आमूल परिवर्तन की आकांक्षा प्रकट करते हैं।

अन्य प्रगतिवादी कवियों में कविवर दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, नागार्जुन, नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', 'विलोचन, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', गोपालसिंह नेपाली, रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, भवानी प्रसाद, शमशेर, केदारनाथ आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। उपर्युक्त कवियों ने प्रगतिवाद के विकास में प्रशंसनीय योगदान दिया है।

प्रयोगवाद –यों तो प्रत्येक युग की कविता में नये प्रयोग हुआ करते हैं और प्रतिभाशाली कवि शिल्प में, भाषा और अभिव्यंजना में नये प्रयोग अवश्य करता है। नित नूतनता कविता का लक्षण है। किन्तु आज हिन्दी काव्य साहित्य में प्रयोगवाद एक नवीन वाद के रूप में अपनी शैलीगत विशेषताओं के आधार पर प्रचलित हो रहा है। कुछ समीक्षकों का मत है कि प्रगतिवाद से असंतुष्ट कवियों ने प्रयोगवाद का प्रचलन किया है। वास्तव में आज कविता की वस्तु में तो नवीनता अथवा नया प्रयोग परिलक्षित नहीं होता है, किन्तु अभिव्यक्तीकरण की रीति में नवीनता अवश्य देखने को मिलती है। नये प्रतीकों तथा उपमानों का प्रयोग करके कविता में चित्रात्मकता दर्शाने के प्रयत्न में प्रगतिवादी कवियों को बड़ी सफलता हाथ लगी है। इस वाद के प्रवर्तक 'अज्ञेय' जी हैं।

'अज्ञेय' ने 'तारसप्तक' में प्रयोगवादी आदर्शों का अच्छा परिचय दिया है तथा प्रयोग की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए अपनी कविताओं के वक्तव्य मे कहा है—"प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दशा में इनकी प्रवृत्ति स्वाभाविक ही हैं। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए है उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए, जिन्हें अभी छुआ नहीं गया है या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।"

(तारासप्तक पृ. 75)

प्रयोगवाद के पोषण में अज्ञेय की जो कविताएं प्रकाश में आयीं वे 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी' और 'इन्द्र धनु रौंदे हुए', हैं।

प्रयोगवादी कवियों की रचनाएँ तीन संग्रहों में संगृहीत हैं। वे क्रमश: तार-सप्तक, दूसरा सप्तक तथा तीसरा सप्तक हैं। प्रयोगवादी कलाकारों में धर्मवीर भारती, नरेश कुमार मेहता, गिरिजाकुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र, भारतभूषण, नलिनीविलोचन शर्मा, गजानन मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर, शकुंतला माथुर, नर्मदाप्रसाद खरे आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं।

कतिपय प्रमुख कवि किसी वादविशेष से संबन्ध रखे बिना युग और परिस्थितिगों के प्रभाव में आकर कविताएँ प्रस्तुत करते जा रहे हैं। प्रतिभाशाली कवि युग का प्रतिनिधित्व करता है। युग-धर्म उसकी वाणी में ध्वनित होता है। दिनकर ने 'परिचय' नामक कविता में अपना अच्छा परिचय दिया है—

सुनूँ क्या सिंधु ! मैं गर्जन तुम्हारा ?
स्वयं युग-धर्म की हुँकार हूँ मैं !

किसी भी महाकवि के लिए यह कथन लागू हो सकता है। युग की आशा-आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं को भी कवि अपनी कविता द्वारा वाणी प्रदान करता है। यही कारण है कि वह युगाराध्य हो जाता है।

किसी वादविशेष के बन्धन को न स्वीकार कर स्वतंत्रतापूर्वक युग की समस्याओं को स्वर प्रदान करनेवाले कवियों में गोपालदास 'नीरज', रामनाथ अवस्थी, देवराज दिनेश, रामानंद दोषी वग़ैरह हैं, जो हिन्दी कविता की श्रीवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

—श्री बालशौरि रेड्डी

1. श्री अयोध्यासिंह अपाध्याय 'हरिऔध'

जन्म : ई. सन् 1865 मृत्यु : ई. सन् 1914

श्री 'हरिऔध' का जन्म उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ नामक स्थान में हुआ। आपने अपने चाचा के निरीक्षण में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। प्रारंभ में आपने व्रजभाषा में काव्य-रचना की। 'रसकलस' इसका सुन्दर नमूना है। इसमें नव-रसों तथा नायिका-भेद का वर्णन है। लक्षणों के उदाहरण के रूप में आपने स्वरचित व्रजभाषा की कविताएँ दी हैं।

द्विवेदी युग के प्रभाव से आपने खड़ोबोली को अपनाया। खड़ी-बोली को सुधारने एवं सँवारने में आपने जो योगदान दिया, वह प्रशंसनीय है। आपके द्वारा विरचित 'प्रिय-प्रवास' खड़ीबोली के गौरव-ग्रन्थों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस काव्य पर आपको 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की ओर से 'मंगलाप्रसाद' पारितोषक प्राप्त हुआ था। संस्कृत के वर्णवृत्तों में हिन्दी कविता करके आपने छन्दों के लिए जो नया मार्ग प्रशस्त किया, वह अपूर्व है। इसकी कथावस्तु पौराणिक अवश्य है, किन्तु इसमें आधुनिक युग की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

'वैदेही वनवास' आपका सुन्दर काव्य है जिसमें सीताजी के वनवास का सजीव चित्र उपस्थित किया गया है।

बोलचाल की मुहावरेदार भाषा में रचित 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' आपके दो काव्व-ग्रन्थ हैं। उर्दू शैली में भी आपने पर्याप्त मात्रा में लिखा है। आप एक सफल कवि ही नहीं, अपितु एक प्रतिभाशाली गद्य-लेखक भी थे।

पवन-दूत

[प्रस्तुत अंश हरिऔध जी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'प्रियप्रवास' के षष्ठ सर्ग से लिया गया है। विरहिणी राधा अपने श्याम के वियोग में व्याकुल है। उसके पास संदेशवाहक हंस नहीं, कालिदास के मेघ नहीं, फिर किसके द्वारा अपना संदेश प्रियतम को भेजे? अन्त में वह पवन को ही दूत बनाकर आवश्यक निर्देश देते हुए कृष्ण के पास भेजती है।]

ज्यों ही मेरा भवन तज तू अल्प आगे बढ़ेगी,
शोभावाली सुखद कितनी मंजु कुंजें मिलेंगी।
प्यारी छाया मृदुल स्वर से मोह लेंगी तुझे वे,
तो भी मेरा दुख लख वहाँ जा न विश्राम लेना॥....

जाते-जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे,
तो जाके सन्निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना।
धीरे-धीरे परस करके गात उत्ताप खोना,
सद्गंधों से श्रमित जन को हर्षितों-सा बनाना॥

संलग्ना हो सुखद जल के श्रान्तिहारी कणों से
लेके नाना कुसुम-कुल का गंध अमोदकारी,
निर्धूली हो गमन करना, उद्धता भी न होना,
आते-जाते पथिक जिससे पंथ में शान्ति पावें॥....

कालिन्दी के पुलिन पर हो जो कहीं भी कढ़े तू,
छूके नीला सलिल उसका अंग उत्ताप खोना।

जी चाहे तो कुछ समय वाँ खेलना पंकजों से,
छोटी-छोटी सु-लहर उठा क्रीड़ितों को नचाना ।।

प्यारे-प्यारे तरु-किशलयों को कभी जो हिलाना,
तो हो जाना मृदुल इतनी, टूटने वे न पावें।
शाखापत्रों सहित जब तू केलि में लग्न हो तो,
थोड़ा-सा भी न दुख पहुँचे शावकों को खगों के ।।

तेरी जैसी मृदु पवन से सर्वथा शान्ति-कामी,
कोई रोगी पथिक पथ में जो पड़ा हो कहीं तो।
मेरी सारी दुखमय दशा भूल उत्कण्ठ होके,
खोना सारा कलुष उसका शन्ति सर्वाङ्ग होना ।।

कोई क्लान्ता कृषक-ललना खेत में जो दिखावे,
धीरे-धीरे परस उसकी क्लान्तियों को मिटाना।
जाता कोई जलद यदि हो व्योम में तो उसे ला,
छाया द्वारा सुखित करना तप्त भूतांगना को ।।

उद्यानों में सु-उपवन में वापिका में सरों में
फूलोंवाले नवल तरु में पत्रशोभी द्रुमों में,
आते-जाते न रहना औ' न आसक्त होना,
कुंजों में औ' कमल-कुल में वीथिका में वनों में ।।

जाते-जाते पहुँच मथुरा-धाम में उत्सुका हो,
न्यारी शोभा वर नगर की देखना मुग्ध होना।

तू होवेगी चकित लखके मेरु से मन्दिरों को,
आभावाले कलश जिनके दूसरे अर्क-से हैं ॥....

तू पावेगी वर नगर में एक भूखंड न्यारा,
शोभा देते अमित जिसमें राज-प्रासाद होंगे।
उद्यानों में परम सुषमा है जहाँ संचिता-सी,
छीने लेते सरवर जहाँ वज्र की स्वच्छता है।

सीध जाके प्रथम गृह के मंजु उद्यान में ही,
जो थोड़ी भी तन-तपन हो सिक्त होके मिटाना।
निर्धूली हो सरस रज से पुष्प के लिप्त होना,
पीछे जाना प्रियसदन में स्निग्धता से बड़ी ही ॥

जो प्यारे के निकट बजती बीन तो मंजुता से,
किंवा कोई मुरज-मुरली आदि को हो बजाता,
या गाती हो मधुर स्वर से मंडली गायकों की,
होने पावे न स्वरलहरी अल्प भी तो विपन्ना ॥

जाते ही छू कमलदल-से पाँव को पूत होना,
काली-काली कलित अलकें गण्डशोभी हिलाना;
क्रीड़ाएँ भी ललित करना ले दुकूलादिकों को,
धीरे-धीरे परस तन को प्यार की बेलि बोना ॥

तेरे में है न यह गुण जो तू व्यथाएँ सुनाये,
व्यापारों को प्रखर मति औ' युक्तियों से चलाना;

बैठे जो हों निज सदन में मेघ-सी कान्तिवाले,
तो चित्रों को उस भवन के ध्यान से देख जाना ॥

जो चित्रों में विरह-विधुरा का मिले चित्र कोई,
तो जा-जाके निकट उसको भाव से यों हिलाना,
प्यारे होके चकित जिससे चित्र की ओर देखें,
आशा है यों सुरति उनको हो सकेगी हमारी ॥

जो कोई भी उस सदन में चित्र उद्यान का हो,
औ' हों प्राणी विपुल उसमें घूमते बावले-से,
तो जाके संनिकट उसके औ' हिलाके उसे भी
देवात्मा को सुरति व्रज के व्याकुलों की कराना ॥

जो प्यारे मंजु उपवन या वाटिका में खड़े हों,
छिद्रों में जा क्वणित करना वेणु-सा कीचकों को ;
यों होवेगी सुरति उनको सर्व गोपांगना की,
जो हैं वंशी-श्रवण-रुचि से दीर्घ उत्कण्ठ होतीं ॥

लाके फूले कमलदल को श्याम के सामने ही,
थोड़ा-थोड़ा विपुल जल में व्यग्र हो-हो डुबाना ।
यों देना ऐ भगिनि, जतला एक अंभोजनेत्रा
आँखों को हो विरह-विधुरा वारि में बोरती है ॥

धीरे लाना वहन करके नीप का पुष्प कोई,
औ' प्यारे के चपल दृग के सामने डाल देना ।

ऐसे देना प्रकट दिखला नित्य आशंकिता हो,
कैसी होती विरहवश मैं नित्य रोमांचिता हूँ ॥

बैठे नीचे जिस विटप के श्याम होवें, उसीका
कोई पत्ता निकट उनके नेत्र के ले हिलाना।
यों प्यारे को विदित करना, चातुरी से दिखाना,
मेरे चिन्ता-विजित चित्त का क्लांत हो कांप जाना ॥

सूखी जाती मलिन लतिका जो धरा में पड़ी हो,
तो पाँवों के निकट उसको श्याम के ला गिराना।
यों सीधे-से प्रकट करना प्रीति से वंचिता हो,
मेरा होना अति मलिन औ' सूखते नित्य जाना ॥

कोई पत्ता नवल तरु का पीत जो हो रहा हो,
तो प्यारे के दृग युगल के सामने ला उसे ही।
धीरे-धीरे सँभल रखना औ' उन्हें यों बताना,
पीला होना प्रबल दुख से प्रोषिता-सा हमारा ॥

यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथाएँ,
धीरे-धीरे वहन करके पाँव की धूलि लाना।
थोड़ी-सी भी चरणरज जो ला न देगी हमें तू,
हा ! कैसे तो व्यथित चित्त को बोध मैं दे सकूँगी ?....

पूरी होंवे न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी,
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले औ' चली जा—

छूके प्यारे कमलपग को प्यार के साथ आ जा,
जी जाऊँगी हृदयतल में मैं तुझीको लगाके ॥

कठिन-शब्दार्थ

मंजु - सुंदर
क्लान्त - थका हुआ
परस करना - छूना, स्पर्श करना
उत्ताप - गर्मी
सद्गंध - अच्छी गंध, सुगंध
संलग्न हो - युक्त हो
श्रान्तिहारी - थकान मिटानेवाला
आमोदकारी - आनंद पैदा करनेवाला
निर्धूली - धूलिरहित, स्वच्छ
उद्धता - जो विनम्र न हो, अविनीत
पंथ - पथ, रास्ता
पुलिन - तट, किनारा
कढ़ें - निकले
वाँ - वहाँ
तरु-किशलय - वृक्षों के कोमल पत्ते
केलि - क्रीड़ा
लग्न - लीन
शावक - शिशु
शान्ति-कामी - शान्ति चाहनेवाला
व्योम - आकाश
भूतांगना - पृथ्वी
वापिका - छोटा तालाब
पत्रशोभी - पत्तों से शोभित
वीथिका - गली
अर्क - सूर्य
संचिता - जमा की हुई, एकत्रित
सरवर - सरोवर
सिक्त - भीगा
बीन - वीणा
मुरज - मृदंग
विपन्ना - नष्ट, छिन्न
पूत - पवित्र
कलित - सुन्दर
गण्डशोभी - गरदन पर लहराती
विरह-विधुरा - वियोगिनी
सुरति - ध्यान
बावला - पागल
सभा-सौध - सभा-भवन
क्वणित - ध्वनित
कीचक - बाँस
अंभोजनेत्रा - कमल समान नेत्रोंवाली
नीप - कदंब
प्रोषित - प्रवासिनी

2. श्री मैथिलीशरण गुप्त

जन्म : सन् 1866 मृत्यु : सन् 1964

श्री मैथिलीशरण का जन्म चिरगाँव, झाँसी में हुआ था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के मार्गदर्शन में आपकी काव्य-कला का सुंदर विकास हुआ था।

गुप्तजी की रचनाओं में आधुनिक युग का प्रतिबिंब देखा जा सकता है। आपके काव्य में राष्ट्रीयता एवं रामभक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। आप राष्ट्रीय धारा के प्रतिनिधि एवं प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। आधुनिक विचारधारा के आप समर्थक तो थे ही, साथ ही प्राचीनता के प्रति आपकी श्रद्धा, विश्वास एवं तन्मयता भी दर्शनीय थी। काव्य के द्वारा राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में गुप्तजी को असाधारण सफलता प्राप्त हो गयी थी। 'भारत-भारती' इसका सुन्दर नमूना है। इस काव्य के द्वारा आपको विशेष ख्याति प्राप्त हुई।

गुप्तजी के काव्य-ग्रन्थों में 'साकेत' का अनुपम स्थान है। खड़ीबोली के गौरव-ग्रन्थों में 'साकेत' का नाम गिना जाता है। उपेक्षिता ऊर्मिला को उचित स्थान देकर आपने काव्य के माध्यम से साहित्यकारों के समक्ष एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। 'यशोधरा', 'पंचवटी' आदि काव्यों में भी आपने नारीत्व एवं मातृत्व के आदर्शों का निर्देश किया है।

आपके अन्य काव्य-ग्रन्थों में 'जयद्रथ-वध', 'जयभारत', 'पृथिवी-पुत्र', 'किसान', 'नहुष', 'द्वापर' इत्यादि मुख्य हैं। आप बंगला भाषा के भी मर्मज्ञ विद्वान और सफल अनुवादक थे।

युग की परिस्थितियों के अनुरूप समय के साथ गुप्तजी का स्वर भी बदलता गया। 'झंकार' में रहस्यवाद और छायावाद का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

ऊर्मिला का विरह

[ये प्रसंग साकेत के नवम सर्ग से लिये गये हैं। इनमें विरह-विदग्धा ऊर्मिला की मनोदशा का मार्मिक चित्रण हुआ है]

(1)

मानस-मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप!
आँखों में प्रिय-मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग?
आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान,
छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान!
उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से,
वर्ण-वर्ण सदैव जिसके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के?
पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे,
छोटे वही उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे?

(2)

जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी,
हरी भूमि के पात-पात में मैंने हृद्‌गति हेरी।
खींच रही थी दृष्टि सृष्टि यह स्वर्णरश्मियाँ लेकर,
पाल रही ब्रह्माण्ड प्रकृति थी, सदय हृदय में सेकर।

तृण-तृण को नभ सींच रहा था बूँद-बूँद रस देकर
बढ़ा रहा था सुख की नौका समय समीरण खेकर।
बजा रहे थे द्विज दल-बल से शुभ भावों की भेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी॥

वह जीवन-मध्याह्न सखी, अब श्रान्ति-क्लांति जो लाया,
खेद और प्रस्वेदपूर्ण यह तीव्र ताप है लाया।
पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया?
रहे न हममें राम हमारे, मिली न हमको माया!
यह विषाद! वह हर्ष कहाँ अब देता था जो फेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी॥

वह कोइल जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष-वृष्टि करती है।
लेता है निःश्वास समीरण, सुरभि धूलि चरती है,
उबल सूखती है जलधारा, यह धरती मरती है।
पत्र-पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी-तेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आंख खुली जब मेरी॥

आगे जीवन की सन्ध्या है, देखें क्या हो आली,
तू कहती है—'चन्द्रोदय हो, काली में उजियाली'?
सिर-आँखों पर क्यों न कुमुदिनी लेगी वह पद-लाली?
किन्तु करेंगे कोक-शोक की तारे जो रखवाली?
'फिर प्रभात होगा' क्या सचमुच? तो कृतार्थ यह चेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी!

(४)

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है हा! दीपक भी जलता है!
सीस हिलाकर दीपक कहता—
'बन्धु, वृथा ही तू क्यों दहता?'
पर पतंग पड़कर ही रहता!
कितनी विह्वलता है!
दोनों ओर प्रेम पलता है।
बचकर हाय! पतंग मरे क्या?
प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या?
जले नहीं तो मरा करे क्या!
क्या यह असफलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।
कहता है पतंग मन मारे—
'तुम महान, मैं लघु, पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाथ हमारे?'
शरण किसे छलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।
दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली।
किन्तु पतंग-भाग्य-लिपि काली,
किसका वश चलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।

जगती वणिग्वृत्ति है रखती।
उसे चाहती जिससे चखती
काम नहीं, परिणाम निरखती।
मुझे यही खलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।

(4)

सिर-माथे तेरा यह दान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
अब क्या माँगूँ भला और मैं फैलाकर ये हाथ?
मुझे भूलकर ही विभु-वन में विचरें मेरे नाथ।
मुझे न भूले उनका ध्यान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,
जिये ऊर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।
विधि से चलता रहे विधान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
दहन दिया तो भला सहन क्या होगा तुझे अदेय?
प्रभु की ही इच्छा पूरी हो, जिसमें सबका श्रेय।
यही रुदन है मेरा गान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
अवधि-शिला का उर पर था गुरु भार,
तिल तिल काट रही थी दृग-जल-धार।

कठिन-शब्दार्थ

थाप - स्थापित कर
आठ पहर - दिन रात, चौबीस घंटे
चौंसठ घड़ी - दिन रात, चौबीसों घंटे
रुदंती - रोती हुई; स्वर्णयोग में काम आनेवाली लता
विक्षेप - चित्त की अस्थिरता, भय
विभूषण - आभूषण
हृद्गति - हृदय की गति या अवस्था
समीरण - वायु, हवा
द्विज - पक्षी, ब्राह्मण
प्रस्वेद - पसीना
हूक - पीड़ा
वृथा - व्यर्थ, बेकार
दहना - जलना
विह्वलता - परेशानी, व्याकुलता
भाग्य-लिपि - क़िस्मत, भाग्य में जो लिखा गया हो
वणिग्वृत्ति - व्यापारिक मनोवृत्ति

कह मुक्त, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

[यह प्रसंग गुप्तजी के 'यशोधरा' काव्य से उद्धृत है। इसमें मानिनी यशोधरा के मनोभावों का दिग्दर्शन कराया गया है।]

निज बन्धन को सम्बन्ध सयत्न बनाऊँ।
कह मुक्ति भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?
जाना चाहे यदि जन्म, भले ही जावे,
आना चाहे तो स्वयं मृत्यु भी आवे,
पाना चाहे तो मुझे मुक्ति ही पावे,
मेरा तो सब कुछ वही, मुझे जो भावे।
मैं मिलन-शून्य में विरह-घटा-सी छाऊँ!
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ!
माना, ये खिलते फूल सभी झड़ते हैं;
जाना, ये दाड़िम, आम सभी सड़ते हैं।

पर क्या यों ही ये कभी टूट पड़ते ?
या काँटे ही चिरकाल हमें गड़ते ?
मैं विफल तभी, जब बीज-रहित हो जाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

यदि हममें अपना नियम और शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है।
वह जरा एक विश्रान्ति, जहाँ संयम है;
नव जीवन-दाता मरण कहाँ निर्मम है?
भव भावे मुझको और उसे मैं भाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

आकर पूछेंगे जरा-मरण यदि हमसे,
शैशव-यौवन की बात व्यंग्य-विभ्रम से,
हे नाथ, बात भी मैं न करूँगी यम से,
देखूँगी अपनी परम्परा को क्रम से।
भावी पीढ़ी में आत्मरूप अपनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

ये चन्द्र-सूर्य निर्वाण नहीं पाते हैं?
ओझल हो-होकर हमें दृष्टि आते हैं।
झोंके समीर के झूम-झूम जाते हैं?
जा-जाकर नीरद नया नीर लाते हैं।
तो क्यों जा जाकर लौट न मैं भी आऊँ?
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

रस एक मधुर ही नहीं, अनेक विदित हैं,
कुछ स्वादु हेतु, कुछ पथ्य हेतु समुचित हैं।
भोगें इन्द्रिय, जो भोग विधान-विहित हैं;
अपने को जीता जहाँ, वहीं सब जित हैं।
निज कर्मों की ही कुशल सदैव मनाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दुख रहता?
प्रिय-हृदय सदय हो तपस्ताप क्यों सहता?
मेरे नयनों से नीर न यदि यह बहता,
तो शुष्क प्रेम की बात कौन फिर कहता?
रह दुख! प्रेम परमार्थ दया मैं लाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

आओ, प्रिय! भव में भाव-विभाव भरें हम,
डूबेंगे नहीं कदापि, तरें न तरें हम।
कैवल्य-काम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसार-हेतु शत बार सहर्ष मरें हम।
तुम, सुनो क्षेम से, प्रेम गीत मैं गाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

कठिन-शब्दार्थ

शम - मन का संयम
व्याधियाँ - रोग
विभ्रम - भ्रांति, उग्रता
निर्वाण - मुक्ति
नीरद - बादल
विभाव - भावोद्दीपन का कारण
कैवल्य - मोक्ष
क्षेम - कुशल-मंगल

3. श्री माखनलाल चतुर्वेदी

जन्म : सन् मृत्यु : ई. सन् 1968

श्री माखनलालजी का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिलांतर्गत बावई नामक गांव में हुआ था। आप एक उच्च कोटि के देशभक्त तथा भावुक कवि हैं। स्वतंत्रता के आंदोलन में सक्रिय भाग लेकर आपने अनेक बार कारावास की सजा भोगी। बलिदान की भावना को आप अधिक महत्व देते थे। 'फूल की चाह' नामक कविता द्वारा आपने उक्त विचार का अच्छा परिचय दिया है।

श्री माखनलालजी चतुर्वेदी की काव्य-साधना राजनैतिक हलचलों के बीच विकसित हुई थी। आपकी दृष्टि में साहित्य और राष्ट्र की सेवा दो भिन्न वस्तुएं नहीं हैं। इसलिए आपका साहित्यिक उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' सभी दृष्टियों से सार्थक कहा जा सकता है।

श्री माखनलालजी द्विवेदी युग के कलाकार थे, लेकिन अपकी रचना शैली, विषयवस्तु और दृष्टिकोण—उस युग के कवियों से भिन्न हैं। एक ओर जहाँ आप विशुद्ध राष्ट्रवादी कवि थे, तो दूसरी ओर भावुकतावादी भी। यही कारण है कि आपकी कविता में यत्र-तत्र हृदय को स्पंदित करनेवाली कोमलतम भावनाओं का भी समावेश पाया जाता है।

आपने खण्ड्वा से प्रकाशित होनेवाले 'कर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र का बरसों सफलतापूर्वक संपादन किया। हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में 'कर्मवीर' की सेवा अपना अलग स्थान रखता है। वैसे श्री चतुर्वेदीजी का मध्यप्रदेश की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान था। आपने समय-समय पर अनेक कविताएं लिखीं। आपके काव्य-ग्रन्थों में 'हिमतरंगिणी', 'हिमकिरीटिनी' आदि मुख्य है।

वीर-पूजा

[राष्ट्र की रक्षा और प्रतिष्ठा का भार वीरों पर है। वीरों से शून्य देश पग-पग पर अपमानित होता है। कवि इन पंक्तियों में वीरों की अभ्यर्थना करते हैं।]

पा प्यारा अमरत्व,
अमर आनन्द अभय पा,
विश्व करे अभिमान,
वीर्य बल पूर्ण, विजय पा,
जागृति जीवन ज्योति
जोर से हो, तू दमके,
परम कार्य का रूप बने,
वसुधा में चमके,
तू भुजा उठा दे हे जयी!
जग चक्कर खाने लगे,
दुखियों के हिय शीतल बने,
जगतीतल हुलसाने लगे।
तेरे कन्धों चढ़े,
जगत जीवन की आशा;
तेरे बल पर बढ़े,
जाति, जागृति, अभिलाषा।
कसी रहे कटि कर्म
महा वारिधि तरने को

गरुड़ छोड़, पद चले,
दुखी का दुख हरने को
वह प्रेम सूत्र में गुंथ रहा
दुखियों के मन का हार है,

वसुधा का बल-संचार ही,
श्री चरणों का उपहार है।
आ, आहा! यह दिव्य
देश दर्शन दिखला, आ!

उलट पलट के विकट
कर्म-कौशल सिखला, आ!
'जय हो' यह हुँकार
हृदय दहलाने वाली!

काँप उठी उस
वह प्रदेश की डाली डाली!
ले, श्री मनुष्यता मत्त हो
विजय ध्वनि आराधे खड़ी,

श्री प्रकृति प्रेम पगली बनी
वीणा के स्वर साधे खड़ी।
आहा! पन्द्रह कोटि
हार ले, आये आली,

जगमग जगमग हुई
कोटि पन्द्रह ये थाली,

अर्घ्य दान के लिए
हिमालय आगे आगे
रत्नाकर ये पड़े,
धुलें श्री चरण सुहाये!
यह हरा हरा भावों भरा
कर्मस्थल स्वीकार हो,
नवजीवन का संचार हो, क्यों हो?
कृति हो, हुँकार हो।

कठिन-शब्दार्थ

हिय - हृदय, दिल
हुलसाना - आनंदित करना
वारिधि - समुद्र
दहलाना - डरा देना, कंपा देना

युगपुरुष

[इस कविता में श्री माखनलालजी ने युग-प्रवर्तक पुरुष के गुण-विशेषों पर सम्यक प्रकाश डाला है।]

उठ-उठ तू, ओ तपी, तपोमय जग उज्ज्वल कर।
गूँजे तेरी गिरा कोटि भवनों में घर-घर।
गौरव का तू मुकुट पहन
युग के कर-पल्लव
तेरा पौरुष जगे, राष्ट्र
हो, उन्नत अभिनव।

तेरे कंधों लहरावे प्रतिभा की खेती,
तेरे हाथों चले नाव जग-संकट खेती।
तुझपर पागल बने आज उन्मत्त जमाना,
तेरे हाथों बुने सफलता ताना-बाना।

तू युग की हुँकार
अमर जीवन की वाणी,
तेरी साँसों अमर
हो उठे युग-कल्याणी।

तेरा पहरेदार विन्ध्य का दक्षिण-उत्तर,
तेरी ही गर्जना नर्मदा का कोमल स्वर।
तेरी जीवित साँस आज तुलसी की भाषा,
तेरा पौरुष सतत अमर जीवन की आशा।

जाग जाग उठ तपी तुझे
जग का आमंत्रण!
विभु दे तुझको उठा—
सौंपकर अमृत के कण!

तेरी कृति पर सजे हिमालय रजतमुकुट-सा,
सिन्धु, इरावति बने सुहावन वैभव घट-सा,
गंगा-जमुना बहें तुम्हारी उर-माला-सी,
विहरित हरित स्वदेश करें, कृषि-जन-कमला-सी।

कमरबंद नर्मदा बने
उठ सेना नायक!

शस्त्र-सज्जिता तरल तापती
बने सहायक !

तेरी असि-सी लटक चलें कृष्णा कावेरी,
आज सृजन में होड़ लगे विधना से तेरी,
लिख-लिख तू ओ तपी जगा उन्मत्त ज़माना,
जिसने ऊँचा शीश किये जग को पहचाना ।

तू हिमगिरि से उठा
कुमारी तक लहराया,
रत्नाकर ले आज
चरण धोने को आया ।

उठ ओ युग की अमर साँस, कृति की नव आशा,
उठ ओ यशोविभूति, प्रेरणा की अभिलाषा,
तेरी आँखों सजे विश्व की सीमा-रेखा,
अंगुलियों पर रहे, जगत की गति का लेखा ।

कठिन-शब्दार्थ

गिरा - वाणी ; बोली
तपी - तपस्वी
कृति - क्रिया ; काम
विधना - अदृष्ट विधाता

4. श्री जयशंकर प्रसाद

जन्म : सन् 1889 मृत्यु : सन् 1937

आपका जन्म काशी के एक संभ्रांत वैश्य परिवार में हुआ था। घर पर ही आपको शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हुई। कविता करने का शौक़ तो आपको बचपन में ही हो गया था। आपने अथक परिश्रम और अनवरत अध्ययन द्वारा अपनी प्रतिभा का अच्छा विकास किया।

श्री प्रसादजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आप मूलतः कवि थे, फिर भी आपने हिन्दी साहित्य के विविध अंगों की समृद्धि में अभूतपूर्व योगदान दिया है। आपने जिस किसी भी साहित्य-विधा का स्पर्श किया, वह स्वर्णिम हो उठी।

आप छायवाद और रहस्यवाद के प्रवर्तक थे। मानवीय भावनाओं का चित्रण जिस कुशलता के साथ आपने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गहरी चिन्तनशीलता, दार्शनिक विचारधारा तथा सांस्कृतिक चेतना से संपन्न प्रसादजी की कविता अत्यन्त भव्य कही जा सकती है।

आपका 'कामायनी' महाकाव्य हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए अभिमान की वस्तु है। आपके अन्य काव्य-ग्रन्थों में 'आंसू', 'लहर', 'झरना', 'कानन-कुसुम' आदि उल्लेखनीय हैं। आप एक सफल नाटककार भी थे; 'अजातशत्रु,' 'स्कंदगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' अत्यंत साहित्यिक महत्व रखते हैं। 'विशाख', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'राज्यश्री', 'एक घूंट' आदि आपके अन्य नाटक हैं।

आप एक उच्चकोटि के कथाकार भी थे। 'इरावती', 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यास, 'इन्द्रधनुष', 'आंधी', 'आकाश-दीप' आदि सुप्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं।

श्रद्धा

['कामायनी' महाकाव्य के 'श्रद्धा' नामक सर्ग से यह प्रसंग लिया गया है। इसमें मनु और श्रद्धा के परस्पर परिचय एवं संवाद का सुन्दर चित्र अंकित हुआ है।]

"कौन तुम? संसृति-जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा अभिषेक?"
सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरी का सा जब सानंद,
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद;
एक झिटका सा लगा सहर्ष,
निरखने लगे लुटे से, कौन—
गा रहा यह सुन्दर संगीत?
कुतूहल रह न सका फिर मौन ॥
और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम;
कुसुम-वैभव में लता समान
चंद्रिका से लिपटा घनश्याम।
नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,

खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घन श्याम;
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।

और उस मुख पर वह मुसक्यान!
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।

कहा मनु ने, "नभ धरणी बीच
बना जीवन रहस्य निरुपाय;
एक उल्का सा जलता भ्रांत,
शून्य में फिरता हूँ असहाय।

पहेली सा जीवन है व्यस्त
उसे सुलझाने का अभिमान
बताया है विस्मृति का मार्ग
चल रहा हूँ बनकर अनजान।

"कौन हो तुम वसंत के दूत,
विरस पतझड़ में अति सुकुमार!
घन तिमिर में चपला की रेख,
तपन में शीतल मंद बयार।

लगा कहने आगंतुक व्यक्ति
मिटाता उत्कंठा सविशेष ;
दे रहा हो कोकिल सानन्द
सुमन को क्यों मधुमय सन्देश—

तपस्वी ! क्यों इतने हो क्लांत ?
वेदना का यह कैसा वेग ?
आह ! तुम कितने अधिक हताश,
बताओ यह कैसा उद्वेग !

हृदय में क्या है नहीं अधीर
लालसा जीवन की निश्शेष ?
कर रहा वंचित कहीं न त्याग
तुम्हें, मन में धर सुन्दर वेश ?

दु:ख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत से बनकर अनजान ।

कर रही लीलामय आनन्द,
महा चिति सजग हुई-सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसीमें सब होते अनुरक्त ।

काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम ;

तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भवधाम
"दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल;
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल;

"एक तुम, यह विस्तृत भूखंड
प्रकृति वैभव से भरा अमंद;
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनन्द।

अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते? तुच्छ विचार!
तपस्वी! आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्मविस्तार।

समर्पण लो सेवा का सार,
सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार।

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।
बनो संसृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल;
विश्व भर सौरभ के भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।

कठिन-शब्दार्थ

संसृति - सृष्टि
जलनिधि - समुद्र
मधुकरी - भ्रमरी
अभिराम - सुन्दर
परिधान - आवरण, वस्त्र
छविधाम - कांति का समूह, सौंदर्य की राशि
अम्लान - खिला हुआ, जो मुरझाया न हो
निरुपाय - उपायरहित
उल्का - आकाश से टूटकर गिरनेवाला प्रकाशमय पिंड या तारा
विस्मृति - विस्मरण, भूल जाना
विरस - नीरस
पतझड़ - शिशिर ऋतु
चपला - बिजली
क्लांत - दुखी
उद्वेग - घबराहट
उन्मीलन - खुलना, व्यक्त होना
मंडित - भूषित
नवल - नूतन
झीना - पतला
गात - शरीर
अमंद - तेज, सुन्दर
उत्सर्ग - त्यागना

5. श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

जन्म : ई. सन् 1898 मृत्यु : ई. सन् 1961

आधुनिक कविता के चार प्रमुख कवियों में आपका नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। बहुमुखी प्रतिभा और विद्वत्ता के आलोक से आपने हिन्दी वाङ्मय के विविध अंगों को प्रकाशमान बना दिया। छायावाद तथा रहस्यवाद के ही नहीं, अपितु प्रगतिवाद के भी प्रवर्तकों में आप अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

निरालाजी ने सर्वप्रथम छन्दों के बन्धनों को तोड़ मुक्त कविता का नया संप्रदाय चलाया। भाषा, अभिव्यक्तीकण, विषय-वस्तु, अलंकार इत्यादि में आपने नये मान-दण्ड स्थापित किये। यही कारण है कि आप युगप्रवर्तक कवि तथा हिन्दी के महाप्राण माने जाते हैं। विचारों के क्षेत्र में आपने क्रांति ही उपस्थित की है। आपकी कविता में गहन दार्शनिकता, शिष्ट व्यंग्य, यथार्थता एवं सजीवता देखने योग्य हैं।

आपके काव्य-ग्रंथ एक दर्जन से अधिक हैं, जिनमें अपरा, अनामिका, नये पत्ते, तुलसीदास, गीतिका, परिमल, कुकुरमुत्ता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आप एक सुन्दर गद्य लेखक भी थे। प्रभावती, बिल्लेसुर बकरिहा आदि उपन्यास, चाबुक, प्रबंध पद्म, प्रबंध पारिजात इत्यादि निबंध-संग्रह, 'देवी' आदि कहानी-संग्रह आपकी प्रतिभा के परिचायक हैं। आप अनेक देशी तथा विदेशी भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान थे। 'रामकृष्ण वचनामृत' का आपने बंगला से हिन्दी में अनुवाद भी किया है।

बादल-राग

[कविवर निरालाजी बादल के माध्यम से विप्लव का आवाहन कर रहे हैं इन पंक्तियों में।]

ऐ निर्बन्ध !—
अन्ध-तम-अगम-अनर्गल—बादल !
ऐ स्वच्छन्द :—
मन्द-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
        बाधारहित विराट !
ऐ विप्लव के प्लावन !
        सावन-घोर गगन के
        ऐ सम्राट !
ऐ अटूट पर छूट टूट पड़नेवाले उन्माद !
विश्व-विभव को लूट-लूट लड़नेवाले अपवाद !
श्रीबिखेर, मुख-फेर कली के निष्ठुर पीड़न !
छिन्न-भिन्न कर पत्र-पुष्प-पादप-वन-उपवन !
वज्र-घोष से ऐ प्रचण्ड !
आतङ्क जमानेवाले !
कम्पित जंगम,—नीड़ विहंगम, ऐ न व्यथा पानेवाले !
भय के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के न जलधर !

कठिन-शब्दार्थ

अगम - न चलनेवाला
अनर्गल - बेरोक, अनियंत्रित
उच्छृंखल - निरंकुश, क्रमरहित
उद्दाम - प्रचंड, उग्र
प्लावन - बाढ़
उन्माद - पागलपन

उद्बोधन

[कवि संसार में नये मूल्यों को स्थापित करना चाहते हैं। सत्य, संतोष आदि उत्तम गुणों से पूर्ण मानवता को प्रतिस्थापित करने के हेतु उद्बोधन करते हैं।]

गरज गरज अन्धकार में अपने संगीत,
बन्धु, वे बाधा-बन्ध-विहीन,
आँखों में नव जीवन की तू अंजन लगा पुनीत,
बिखर झर जाने दे प्राचीन।
बार बार उर की वीणा में कर निष्ठुर झंकार
उठा तू भैरव निर्झर राग,
कहा उसी स्वर में सदियों का दारुण हाहाकार
संचरित कर नूतन अनुराग।
बहता अन्ध प्रभंजन ज्यों, यह त्योंही स्वर-प्रवाह
मचलकर दे चंचल आकाश
उड़ा-उडाकर पीले पल्लव, करे सुकोमल राह,
तरुण तरु; भर प्रसून की प्यास।
काँपे पुनर्वार पृथ्वी शाखा-कर-परिणय-माल,
सुगन्धित हो रे फिर आकाश,

पुनर्वार गायें नूतन स्वर, नव कर से दे ताल,
चतुर्दिक छा जाये विश्वास।
मन्द्र उठा तू बन्द-बन्द पर जलनेवाली तान,
विश्व की नश्वरता कर नष्ट,
जीर्ण-शीर्ण, दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट।
ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट,
खोल दे कर कर-कठिन प्रहार
आये अभ्यन्तर संयत चरणों से नव्य विराट,
करे दर्शन, पाये आभार।
छोड़, छोड़ दे शंकाएँ रे निर्झर-गर्जित वीर!
उठा केवल निर्मल निर्घोष;
देख सामने, बना अचल उपलों को उत्पल धीर!
प्राप्त कर फिर नीरव सन्तोष!
भर उद्दाम वेग से बाधाहर तू कर्कश प्राण;
दूर कर दे दुर्बल विश्वास,
किरणों की गति से आ आ तू, गा तू गौरव-गान,
एक कर दे पृथ्वी-आकाश।

कठिन-शब्दार्थ

दीर्ण - विदारित, फटा हुआ
अभ्यन्तर - भीतर, मध्य
संयत - अविरल, मिलानेवाले
निर्घोष - शब्द
उत्पल - कमल

सखि, वसन्त आया

[वसंत के आगमन से प्रकृति रूपी नारी नवयौवन की शोभा से भर उठती है। इसमें वसंत को यौवन तथा धरती को नारी के रूप में कवि ने दर्शाया है।]

सखि, वसन्त आया।
भरा हर्ष वन के मन,

नवोत्कर्ष छाया।
किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
मधुप - वृन्द बन्दी—
पिक-स्वर नभ सरसाया।

लता-मुकुल-हार-गन्ध-भार भर
बही पवन बन्द मन्द मन्दतर,
जागी नयनों में नव-
यौवन की माया।

आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छूटे,
स्वर्ण - शस्य अंचल
पृथ्वी का लहराया।

6. श्रीमती महादेवी वर्मा

जन्म : .ई. सन् 1907

महादेवीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के फ़र्रुखाबाद में हुआ था। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. किया और इस समय 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' की प्रधानाचार्या के पद पर कार्य कर रही हैं।

आप वेदना की कवयित्री हैं। आपके काव्य की आधारशिला दुख है। दुख और पीड़ा के साथ प्रकृति के चित्रण में भी आपने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है।

महादेवीजी के गीत जहाँ अंतर्मुखी हैं वहाँ गद्य-लेखन में वे बहिर्मुखी हैं। गीतों में व्यापक कल्पना का चित्र उभर आया है, तो गद्य में जीवन की घोर यथार्थता प्रकट हुई है। कवयित्री की भाषा सशक्त, कोमल एवं सौंदर्य पूर्ण होती है।

चित्र-लेखन में भी महादेवी वही प्रतिभा रखती हैं जो काव्य-रचना में उन्हें प्राप्त है। आपके काव्य-ग्रन्थों में 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' 'दीप शिखा', 'सांध्य गीत' आदि विशेष विख्यात हैं। इनके अतिरिक्त आपने ऋग्वेद, कुमार संभव, रघुवंश इत्यादि संस्कृत साहित्य के मनोरम अंशों का सुन्दर पद्यानुवाद भी किया है।

आपने कुछ समय तक मासिक 'चाँद' का सफलतापूर्वक संपादन भी किया था। आपके गद्य-ग्रन्थों में 'शृंखला की कड़ियाँ', 'अतीत के चल-चित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' आदि विशेष लोकप्रिय हैं।

प्रतीक्षा

[प्रियतम की प्रतीक्षा में प्रेयसी पलक के पाँवड़े बिछाये बैठी है। वह अपने प्रियतम से मिलने के लिए अत्यंत व्याकुल है। उस पीड़ा में वह आँसू बहाती है। आख़िर उसे अवसाद और निराशा आ घेरती हैं। इन्हीं भावों का मार्मिक चित्र इन पंक्तियों में उपस्थित किया गया है।]

जिस दिन नीरव तारों से,
बोलीं किरणों की अलकें—
'सो जाओ अलसाई हैं,
सुकुमार तुम्हारी पलकें!'

जब इन फूलों पर मधु की
पहली बूँदें बिखरी थीं,
आँखें पंकज की देखीं
रवि ने मनुहार भरी-सी।

दीपकमय कर डाला जब
जलकर पतंग ने जीवन,
सीखा बालक मेघों ने
नभ के आँगन में रोदन;

उजियारी अवगुण्ठन में
विधु ने रजनी को देखा,
तब से मैं ढूँढ़ रही हूँ
उनके चरणों की रेखा।

मैं फूलों में रोती वे
बालारुण में मुस्काते,
मैं पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ में उड जाते।

वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली में देखूँ,
यह कौन बता जाएगा
किसमें पुतली को देखूँ?

मेरी पलकों पर रातें
बरसाकर मोती सारे,
कहतीं 'क्या देख रहे हैं
अविराम तुम्हारे तारे'।

तुम ने इन पर अंजन से
बुन बुन कर चादर तानी,
इन पर प्रभात ने फेरा
आकर सोने का पानी!

इन पर सौरभ की साँसें
लुट लुट जातीं दीवानी,
यह पानी में बैठी हैं
बन स्वप्न-लोक की रानी!

कितनी बीतीं पतझारें
कितने मधु के दिन आये,
मेरी मधुमय पीडा को
कोई पर ढूँढ़ न पाये!

झिप-झिप आँखें कहती हैं
यह कैसी है अनहोनी?
हम और नहीं खेलेंगी
उनसे यह आँखमिचौनी।

अपने जर्जर अंचल में
भरकर सपनों की माया,
इन थके हुए प्राणों पर
लाई विस्मृति की छाया!

मेरे जीवन की जाग्रति!
देखो, फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें
तुम चिरनिद्रा बन जाना!

कठिन-शब्दार्थ

मनुहार - मनाने के लिए की जानेवाली विनती
अवगुण्ठन - घूँघट, पर्दा
झिप - झेंपकर, बंद होकर
पतझार - शिशिर ऋतु

निशा को धो देता राकेश

[कवयित्री अपने प्रियतम के साथ की संयोगकालीन दशा का स्मरण कर वर्तमान के साथ समझौता करने की अभिलाषा रखती हैं। उन्हीं स्मृतियों को भावी जीवन का संबल बनाना चाहती हैं।]

निशा को धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास,
'बता दो मधु मदिरा का मोल;

झटक जाता था पागल वात
धूलि में तुहिन-कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार!

बिछाती थी सपनों के जाल,
तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुसकान,
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर;

भूलती थी मैं सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश!
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार!

गए तब से कितने युग बीत,
हुए कितने दीपक निर्वाण,

नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा-सा मनमोहन गान!

नहीं अब पाया जाता देव!
थकी अंगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार!

रजतकरों की मृदुल तूलिका
से ले तुहिनबिन्दु सुकुमार,
कलियों पर जब आँक रहा था
करुण कथा अपनी संसार

तरल हृदय की उच्छ्वास जब
भोले मेघ लुटा जाते,
अन्धकार दिन की चोटों पर
अंजन बरसाते आते!

मधु की बूँदों में छलके जब
तारक-लोकों के शुचि फूल,
विधुर हृदय के मृदु कम्पन-सा
सिहर उठा वह नीरव कूल;

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से
स्वप्नलोक के - से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाये
तब मधुमय मुरली की तान!

चल चितवन के दूत सुना,
उनके, पल में रहस्य की बात,
मेरी, निर्निमेष पलकों में
मचा गये क्या-क्या उत्पात!

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा वे विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले!

पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार!

कैसे कहती हो सपना है
अलि! उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास!

कठिन-शब्दार्थ

बिछलना - फिसलना; डगमगाना

विधुर - वियोगी; वह पुरुष जिसकी स्त्री मर गयी हो

7. श्री सुमित्रानंदन पंत

जन्म : सन् 1899

आपका जन्मस्थान हिमालय का सुरम्य पर्वतीय अंचल अल्मोड़ा है। आपकी माता का देहान्त आपके बचपन में ही हो गया था। प्रकृति की गोद में ही आपके शैशव का विकास हुआ, मातृहीन बालक के लिए वही माता, गुरु और प्रेरणा बनी।

प्रकृति के सामीप्य में आपके भावुक हृदय को कविता की प्रेरणा मिली। वह युग छायावाद के आगमन का था। छायावाद के उदय के साथ-साथ आप काव्य-भारती के प्रांगण में अपनी 'वीणा' लेकर आये। काव्य के विकास का जो अंकुर 'वीणा' में प्रस्फुटित हुआ था, वह पल्लवित हुआ 'पल्लव' में जब उसमें बौर आ गये, तो लोगों ने आपका 'गुँजन' सुना। 'गुँजन' की रचना के बाद आपकी कविता ने एक नया मोड़ लिया। कवि ने जब यथार्थ जीवन की कुरूपता और विषमता देखी, तो वह फूलों और भँवरों के गीत गाना भूल गया। जीवन के यथार्थ पहलू को अपनाकर आपने 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना की। छायावाद से प्रगतिवाद की ओर आपके झुकाव का यही इतिहास है।

आप एक सचेतन कलाकार हैं। शब्दशिल्पी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में आप हिन्दी काव्य-कानन के 'ज्योतिविहग' हैं। मानव के सुन्दर एवं मंगलमय भविष्य पर आपकी दृढ़ आस्था है। छायावाद और प्रगतिवाद से सम्बन्धित दो-दो युगों के प्रवर्तक होते हुए भी किसी युगविशेष से आप बँधे नहीं रहे। इन दिनों आप योगी अरविंद से प्रभावित होकर काव्य-रचना कर रहे हैं।

मौन निमंत्रण

[कवि प्रकृति के विविध व्यापारों को देख ईश्वरीय सत्ता का आभास पाता है और उन व्यापारों में कोई मौन संकेत पाकर कवि सोचता है कि उसे निमंत्रण दिया जा रहा है।]

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व की पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,

न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन!

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार
दीर्घ भरता समीर निःश्वास
प्रखर झरती जब पावस धार ;

न जाने तपक तडित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन!

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास-
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,

न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजना मौन!

क्षुब्ध जल-शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;

उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने मुझे बुलाता मौन!

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर,
विहगकुल की कलकंठ हिलोर
मिला देती भू नभ के छोर;

न जाने अलस पलक-दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन!

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर कुल की झनकार,
कँपा देता तन्द्रा के तार;

न जाने खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन!

कनक छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,

सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प बन जाते हैं गुँजार ;
न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में श्रमित अपार,
जुड़ाता जब मैं आकुल प्राण ;
न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया जग में मौन !

न जाने कौन, आये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान
फूँक देते छिद्रों में गान ;
अहे सुख-दुख के सहचर मौन !
नहीं कह सकता तुम हो कौन !

कठिन-शब्दार्थ

ज्योत्स्ना - चाँदनी
अजान - अज्ञात
भीमाकाश - विशाल आकाश
तमसाकार - अंधकार के रूप में
पावस-धार - वर्षा की धारा
तपक - कौंध, चमक

तड़ित - बिजली
इंगित - संकेत
मधुमास - वसंत
मिस - बहाने
वात - हवा
फेनाकार - फेन के रूप में

विथुरा - छिन्न-भिन्न
अलस पलक-दल - अलसायी पलकें
तुमुल - घोर
झींगुर - एक बरसाती कीड़ा
तंद्रा - अर्ध निद्रा
खद्योत - जुगनू
सकाल - प्रातःकाल
सुरभिपीड़ित - सुगंध में मत्त
गुरुतर - भारी
छाया-जग - सौंदर्य-लोक
द्युतिमान - ज्योतिर्मय

आः धरती कितना देती है

[कविवर पंत ने इस कविता में धरती के महत्व का उद्घोष करते हुए यह बताया है कि धरती रत्नप्रसविनी वसुधा ज़रूर है, किन्तु उसकी शोभा सच्ची सभ्यता, क्षमता, ममता तथा मानवता की स्थापना के द्वारा ही बढ़ती है। यह उत्तरदायित्व मानव-समाज पर है। इसी सत्य का परिचय कवि इस पद्य में कराते हैं।]

मैंने छुटपन में छिपकर पैसे बोये थे,
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फ़सलें खनकेंगी,
और, फूल-फलकर, मैं मोटा सेठ बनूँगा!
पर, बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
वंध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला—
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गए!
मैं हताश हो, बाट जोहता रहा दिनों तक
बाल कल्पना के अपलक पाँवड़े बिछाकर!
मैं अबोध था, मैंने ग़लत बीज बोये थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था!

अर्धशती हहराती निकल गई है तब से।
कितने ही मधु पतझर बीत गये अनजाने,
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूली, शरदें मुसकाईं,
सी सी कर हेमंत कँपे, तरु झरे, खिले वन!
औ' जब फिर से गाढ़ी ऊदी लालसा लिये
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर,
मैंने कौतूहलवश, आँगन के कोने की
गीली तह को यों ही उँगली से सहलाकर
बीज सेम के दबा दिये मिट्टी के नीचे!—
भू के अंचल में मणि माणिक बाँध दिये हों!
मैं फिर भूल गया इस छोटी-सी घटना को,
और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन!
किन्तु, एक दिन, जब मैं संध्या को आंगन में
टहल रहा था—तब सहसा मैंने जो देखा
उससे हर्ष-विमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से!

देखा, आँगन के कोने में कई नवागत,
छोटा छोटा छाता ताने खड़े हुए हैं!
छाता कहूँ कि विजय-पताकाएँ जीवन की,
या हथेलियाँ खोले थे वे नन्हीं, प्यारी—
जो भी हो, वे हरे उल्लास से भरे
पंख मारकर उड़ने को उत्सुक लगते थे—
डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चों-से!

निर्निमेष, क्षण-भर, मैं उनको रहा देखता—
सहसा मुझे स्मरण हो आया कुछ दिन पहिले
बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन में,
और उन्हींसे बौने पौधों की यह पलटन
मेरी आँखों के सम्मुख अब खड़ी गर्व से
नन्हें नाटे पैर पटक, बढ़ती जाती है!

तब से उनको देखता रहा—धीरे-धीरे
अनगिनती पत्तों से लद, भर गईं झाड़ियाँ,
हरे-भरे टँग गये कई मखमली चँदोवे!
बेलें फैल गईं बल खा, आँगन में लहरा—
और सहारा लेकर बाड़े की टट्टी का
हरे-हरे सौ झरने फूट पड़े ऊपर को—
मैं अवाक् रह गया वंश कैसे बढ़ता है!
छोटे तारों-से छितरे, फूलों के छींटे,
झागों-से लिपटे लहरी श्यामल लतरों पर
सुन्दर लगते थे, मावस के हँसमुख नभ-से,
चोटी के मोती-से, आँचल के बूँटों-से!

आः धरती कितना देती है! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को!
नहीं समझ पाया था मैं उसके महत्व को—
बचपन में, छिः स्वार्थ-लोभ-वश पैसे बोकर!
रत्न-प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूँ!

इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं,
इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं,
इसमें मानव-ममता के दाने बोने हैं,
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फ़सलें
मानवता की ; जीवन-श्रम से हँसें दिशाएँ ;
हम जैसा बोएँगे वैसा ही पाएँगे !

कठिन-शब्दार्थ

कलदार - कल से ढला हुआ सिक्का, रुपया
बंजर - वह ज़मीन जो उपजाऊ नहीं है, ऊसर
वंध्या - वह स्त्री जिसे बच्चा न होता हो
हताश - जिसकी आशा नष्ट हो गयी हो ; निराश
अपलक - निर्निमेष, एकटक
पावड़ा - वह कपड़ा जिसे किसी आदरणीय व्यक्ति के चलने के लिए मार्ग में बिछाया जाता है
रोपना - ज़मीन में पौधे खोंसना
तृष्णा - प्यास, बड़ी आशा
अर्धशती - पचास साल
ऊदी - ऊद के रंग का
कजरारे - काले
मधु - वसंत ऋतु
पतझर - शिशिर ऋतु
हर्षविमूढ़ - आनन्द के मारे कर्तव्य को भूले हुए
नवागत - नया आया या निकला हुआ
डिम्ब - अण्डा
बौना - बहुत छोटा, वामन
चँदोवा - टोपी के ऊपर का गोल भाग
बल खाना - टेढ़ा होना
बाड़ा - आवरण, घेरा
लतर - लता, बेल
मावस - अमावस, अमावास्या
बूटा - कपड़े पर बनी फूल-पत्ती
रत्नप्रसविनी - रत्नों को जन्म देनेवाली, धरती
दाना - बीज
सुनहली - स्वर्णिम

8. श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

जन्म : सन् 1909 मृत्यु : सन् 1974

आपका जन्म बिहार के गंगातटवर्ती सिमरिया गाँव में हुआ था। पहले सरकारी नौकरियाँ कीं, कुछ समय प्रोफ़ेसर, स्वतंत्र साहित्यकार तथा भारतीय संसद के सदस्य, फिर विश्वविद्यालय के उपकुलपति और भारत सरकार की हिन्दी सलाहकार समिति के अध्यक्ष रहे।

हिन्दी की राष्ट्रीय धारा के आप सशक्त कवि हैं। आपकी कविता में तरुण हृदयों के सुप्त तारों को झंकृत कर देने की विलक्षण शक्ति है। प्रारंभ से ही आप इतने संवेदनशील रहे कि भारत की दलितावस्था को देखकर आपके नयनों में अश्रु उमड़ आये। प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता की भव्यता का आपपर इतना गहरा प्रभाव है कि वर्तमान की पृष्ठभूमि में भी भूतकाल को ही साकार देखने की आकांक्षा रखते हैं। अतीत के प्रति ऐसी गहरी आस्था शायद ही किसी अन्य कवि में मिले।

आज मनुष्य के मस्तिष्क का तो अभूतपूर्व विकास हुआ है, किंतु हृदय उपेक्षित रह गया है। आप इस वातावरण से क्षुब्ध तो बेहद हैं, किंतु हताश नहीं। आप यह जानते हैं कि करुणा, मैत्री और अहिंसा के तत्वों का प्रसार भारत की आध्यात्मिक भूमि से ही होगा। इसीलिए आप प्रेम के गीत गाते जा रहे हैं। मानवता के मंगलमय भविष्य के प्रति आपकी पूरी आस्था है। आपने अपने लोकप्रिय काव्य 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध की समस्या पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। नील कुसुम, रेणुका, रसवंती, द्वन्द्वगीत, रश्मिरथी, ऊर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा आदि आपके अन्य पद्य-ग्रन्थ हैं।

परशुराम की प्रतीक्षा

[कविवर दिनकरजी भारत की वर्तमान स्थिति को संभालने के लिए परशुराम के आदर्शों को स्थापित करना चाहते हैं। एक ओर वीरता, पराक्रम एवं भुजबल हो और दूसरी ओर त्याग, तपस्या और आत्मबल हो। इन दोनों शक्तियों को संतुलित रूप में प्रतिष्ठित करने पर ही भावी भारत का भाग्योदय होगा। इसके लिए कवि पौरुष और शांति को हमारे उत्तम आदर्श मानते हैं।]

कुछ पता नहीं, हम कौन बीज बोते हैं;
है कौन स्वप्न, हम जिसे यहाँ ढोते हैं।

पर हाँ, वसुधा दानी है, नहीं कृपण है,
देता मनुष्य जब भी उसको जल-कण है;
यह दान वृथा वह कभी नहीं लेती है,
बदले में कोई दूब हमें देती है।

पर, हमने तो सींचा है उसे लहू से,
चढ़ती उमंग की कलियों की खुशबू से।
क्या यह अपूर्व बलिदान पचा वह लेगी?
उद्दाम राष्ट्र क्या हमें नहीं वह देगी?

ना, यह अकाण्ड दुष्काण्ड नहीं होने का,
यह जगा देश अब और नहीं सोने का।
जब तक भीतर की गाँस नहीं कढ़ती है,
श्री नहीं पुनः भारत-मुख पर चढ़ती है।

कैसे स्वदेश की रूह चैन पायेगी?
किस नर-नारी को भला नीन्द आयेगी?

कुछ सोच रहा है समय राह में थमकर,
है ठहर गया सहसा इतिहास सहम कर।
सदियों में शिव का अचल ध्यान डोला है,
तोपों के भीतर से भविष्य बोला है।

चोटें पड़ती यदि रहीं, शिला टूटेगी,
भारत में कोई नयी धारा फुटेगी।

हम खड़े ध्वंस में जब भी कुछ गुनते हैं,
रथ के घर्घर का नाद कहीं सुनते हैं।
जिसकी आशा में खड़ा व्यग्र जन-जन में
यह उसी वीर का, स्यात, वज्र-स्यंदन है।

अम्बर में जो अप्रतिम क्रोध छाया है,
पावक जो हिम को फोड़ निकल आया है,
वह किसी भाँति भी वृथा नहीं जायेगा,
आयेगा, अपना महा वीर आयेगा।

हाँ, वही, रूप प्रज्वलित विभासित नर का,
अंशावतार सम्मिलित विष्णु-शंकर का।
हाँ वही, दुरित से जो न सन्धि करता है,
जो संत धर्म के लिए खड्ग धरता है।

विद्‌युत बनकर जो चमक रहा चिंतन में,
गुंजित जिसका निर्घोष लोक-गर्जन में,
जो पतन-पुँज पर पावक बरसाता है,
यह उसी वीर का रथ दौड़ा आता है।

गाओ कवियो! जयगान, कल्पना तानो,
आ रहा देवता जो, उसको पहचानो।
है एक हाथ में परशु एक में कुश है,
आ रहा नये भारत का भाग्यपुरुष है!

यह वज्र वज्र के लिए, सुमों का सुम है;
यह और नहीं कोई, केवल हम तुम हैं।
यह नहीं जाति का, न तो गोत्र-बन्धन का;
आ रहा मित्र भारत-भर के जन-जन का।

गांधी-गौतम का त्याग लिये आता है,
शंकर का शुद्‌ध विराग लिये आता है।
सच है, आँखों में आग लिये आता है,
पर यह स्वदेश का भाग लिये आता है।

मत डरो, सन्त यह मुकुट नहीं माँगेगा,
धन के निमित्त यह धर्म नहीं त्यागेगा,
तुम सोओगे, तब भी यह ऋषि जागेगा,
ठन गया युद्‌ध तो बम-गोले दागेगा।

जब किसी जाति का अहं चोट खाता है,
पावक प्रचंड होकर बाहर आता है।
यह वही चोट खाये स्वदेश का बल है,
आहत भुजंग है, सुलगा हुआ अनल है।

विक्रमी रूप नूतन अर्जुन-जेता का,
आ रहा स्वयं यह परशुराम त्रेता का।
यह उत्तेजित, साकार, क्रुद्ध भारत है,
यह और नहीं कोई, विशुद्ध भारत है।

पापों पर बनकर प्रलय-बाण छूटेगा,
यह क्लीब-धर्म पर बाज-सदृश टूटेगा।
जो रुष्ट खड्ग से हैं, उनसे रूठेगा,
कृत्रिम विभाकरों का प्रकाश लूटेगा।

रह जाएगा वह नहीं ज्ञान सिखलाकर,
दूरस्थ गगन में इन्द्रधनुष दिखलाकर।
वह लक्ष्यबिन्दु तक तुमको ले जाएगा,
उँगलियाँ थाम मंजिल तक पहुँचाएगा।

जब वह आयेगा, द्विधा-द्वन्द्व बिनसेगा,
आलिंगन में अवनी को व्योम कसेगा।
विज्ञान धर्म के धड़ से भिन्न न होगा,
भवितव्य भूत गौरव से छिन्न न होगा।

जब वह आएगा, खल कुबुद्धि छोड़ेंगे,
सब साँप आप ही फण अपने तोड़ेंगे।
विषवाह-अभ्र गांधी पर नहीं घिरेंगे,
शांति के नीड़ में गोले नहीं गिरेंगे।

कठिन-शब्दार्थ

कृपण - लोभी
गाँस - गाँठ ; भेद की बात
डोलना - हिलना
स्यात - कदाचित, शायद
स्यंदन - रथ
अप्रतिम - बेजोड़, अनुपम
पावक - अग्नि, आग
विभासित - प्रकाशित, प्रकटित
दुरित - पाप, संकट
जेता - विजेता, विजयी
क्लीब - नपुंसक
विभाकर - सूर्य
द्विधा - संदेह, अनिश्चय
बिनसना - नष्ट होना
भवितव्य - भविष्य

अर्धनारीश्वर

[कविवर मानव के हृदय में पुरुषोचित तेज, पौरुष एवं त्याग के नारीसुलभ दया, स्नेह, सहानुभूति एवं स्निग्धता के भावों को देखना चाहते हैं। पुरुष और नारी के उत्तम गुणों के समन्वय से यह जगत स्वर्ग बन सकता है। इन्हीं गुणों का आवाहन कवि करते हैं।]

एक हाथ में डमरू, एक में वीणा मधुर, उदार,
एक नयन में गरल, एक में संजीवन की धार।
जटाजूट में लहर पुण्य की शीतलता-सुखकारी,
बालचन्द्र दीपित त्रिपुण्ड्र पर बलिहारी! बलिहारी!

प्रत्याशा में निखिल विश्व है, ध्यान देवता! त्यागो,
बाँटो बाँटो अमृत, हिमालय में महान् ऋषि! जागो।
फेंको कुमुद-फूल में भर-भर किरण, तेज दो, तप दो,
ताप-तप्त व्याकुल मनुष्य को शीतल चन्द्रातप दो।

सूख गये सर सरित, क्षार निस्सीम जलधि का जल है;
ज्ञानघूर्णि पर चढ़ा मनुज को मार रहा मरुथल है।
इस पावक को शमित करो, मन की यह लपट बुझाओ,
छाया दो नर को, विकल्प की इति से इसे बचाओ।

रचो मनुज का मन निरभ्रता लेकर शरद गगन की,
भरो प्राण में दीप्ति ज्योति ले शान्त-समुज्ज्वल घन की।
पद्म-पत्र पर वारि-बिन्दु-निभ नर का हृदय विमल हो,
कूजित अन्तर-मध्य निरन्तर सरिता का कलकल हो।

यही माँगती एक धार, जो सबका हृदय भिगोये,
अवगाहन कर जहाँ मनुजता दाह-द्वेष-विष खोये।
मही माँगती एक गीत, जिसमें चाँदनी भरी हो,
खिलें सुमन, सुन जिसे वल्लरी रातों-रात हरी हो।

मही माँगती ताल-ताल भर जाये श्वेत कमल से,
मही माँगती फूल कुमुद के बरसें विधुमंडल से।
मही माँगती प्राण-प्राण में सजी कुसुम की क्यारी,
पाषाणों में गूँज गीत की, पुरुष-पुरुष में नारी।

लेशमात्र रस नहीं, हृदय की पपड़ी फूट रही है,
मानव का सर्वस्व निरंकुश मेधा लूट रही है।
रचो रचो शाद्वल, मनुष्य निज में हरीतिमा पाये,
उपजाओ अश्वत्थ, क्लान्त नर जहाँ तनिक सुस्ताये।

भरो भस्म में क्लिन्न अरुणता कुंकुम के वर्षण से,
संजीवन दो ओ त्रिनेत्र! करुणाकर! वाम नयन से।
प्रत्याशा में निखिल विश्व है, ध्यान देवता! त्यागो,
बाँटो बाँटो अमृत, हिमालय के महान् ऋषि! जागो!

कठिन-शब्दार्थ

क्षार = राख, नमक
घूर्णि - घूमना, भ्रमण
मरुथल - रेगिस्तान
शमित - शांत
विकल्प - अनिश्चय, संदेह
निरभ्रता - मेघ से रहित
अवगाहन - स्नान करना, डूबना
वल्लरी - लता
पपड़ी - ऊपरी परत
मेधा - बुद्धि-बल
शाद्वल - घास का मैदान, हरित-भूमि
हरीतिमा - हरापन, ताज़गी
क्लांत - थका
क्लिन्न - आर्द्र, गीला
त्रिनेत्र - ईश्वर, शिव
प्रत्याशा - आशा

9. श्री हरिवंशराय 'बच्चन'

जन्म : सन् 1907

आपका जन्मस्थान इलाहाबाद है। अभी हाल तक आप इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अंग्रज़ी के प्रोफ़ेसर थे, किन्तु आजकल भारत सरकार के परराष्ट्र मंत्रालय में हिन्दी के विशेष अधिकारी हैं।

आपकी कविताओं का आपके जीवन से गहरा संबन्ध है। उन्नीस वर्ष की अवस्था में आपका विवाह हुआ था, किन्तु पत्नी श्यामा कुछ वर्षों के बाद ही चल बसीं। आपके जीवन की यह अत्यत दारुण घटना थी। अपने वेदनाविकल कंठ से अ'पने उन दिनों ऐसे गान गाये कि चाँद-सितारे भी रोने-से लगे। लेकिन समय के साथ ही भावनाएं बदलीं और आपके जीवन में द्वितीय पत्नी श्रीमती तेजी का आगमन हुआ। आपके जीवन की जो तरी जीर्ण हो गयी थी, वह फिर नयी बन गयी। 'निशानिमंत्रण' के कवि ने एक बार पुन: 'मिलनयामिनी' के गीत गाये और अपनी भावनाओं को 'सतरंगिनी' का रूप दिया।

जीवन और यौवन के आप गायक हैं। आपके व्यक्तित्व में प्रेम की सुकुमारता और कर्तव्य की दृढ़ता साथ-साथ दृष्टिगत होती हैं। पहले-पहल अपनी प्रसिद्ध रचना 'मधुशाला' लेकर आप काव्य-क्षेत्र में आये थे। उसीके कारण आपको 'हालावाद' नामक एक नये वाद का प्रवर्तक भी माना गया, किन्तु आपकी काव्यसाधना 'हालावाद' तक ही सीमित नहीं रही। समय के साथ ही आप नयी दिशाएँ अपनाते रहे हैं। जीवन के प्रति आपका दृष्टिकोण बिलकुल यथार्थवादी है। मन में कहीं भी झिझक नहीं, डर नहीं, जो भी कहना होता है वह निर्भीक होकर साफ़-साफ़ कह देते हैं।

प्याला

[प्याला यहाँ पर मानव का प्रतीक है, मधु मन अथवा हृदय का। मन अपने भावों में आप मस्त रहता है। भावना रूपी मधु उसे तृप्त रखती है। उस मस्ती की स्थिति में दुनिया के भेद-भाव मन का स्पर्श नहीं कर पाते। मधु के सेवन के पश्चात् मनुष्य समस्त जगत को समान मानता है। फिर भी मानव विश्वरूपी रंगमंच पर अभिनय दिखा अंतर्धान हो जाता है।]

(1)

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन मेरा परिचय!

कल काल-रात्रि के अंधकार
में थी मेरी सत्ता विलीन,
इस मूर्तिमान जग में महान
था मैं विलुप्त कल रूप-हीन,

कल मादकता की भरी नींद
थी जड़ता से ले रही होड़!

किन सरस करों का परस आज
करता जाग्रत जीवन नवीन!

मिट्टी से मधु का पात्र बनूँ—
किस कुंभकार का यह निश्चय?....मिट्टी

(2)

जो रस लेकर आया भू पर
जीवन-आतप ले गया छीन,

खो गया पूर्व गुण, रंग, रूप
हो जग की ज्वाला के अधीन;
मैं चिल्लाया, क्यों ले मेरी
मृदुता करती मुझको कठोर?
लपटें बोलीं, 'चुप, बजा ठोंक
लेगी तुझको जगती प्रवीण।'
यह लो, मीना-बाज़ार लगा,
होता है मेरा क्रय-विक्रय।....मिट्टी

(3)

मुझको न सके ले धन-कुबेर
दिखलाकर अपना ठाट-बाट,
मुझको न सके ले नृपति मोल
दे माल-ख़ज़ाना, राजपाट,
अमरों ने अमृत दिखलाया,
दिखलाया अपना अमर लोक;
ठुकराया मैंने दोनों को
रखकर अपना उन्नत ललाट;
बिक, मगर, गया मैं मोल बिना
जब आया मानव सरस-हृदय।....मिट्टी

(4)

मेरे पथ में आ करके
तू पूछ रहा है बार-बार,

'क्यों तू दुनिया के लोगों में
करता है मदिरा का प्रचार ?'
मैं वाद-विवाद करूँ तुझसे,
अवकाश कहाँ इतना मुझको,
'आनन्द करो'—यह व्यंग-भरी
है किसी दग्ध उर की पुकार ;
कुछ भी बुझाने को पीते
ये भी, कर मत इनपर संशय।....मिट्टी

(5)

सुनकर आया हूँ मंदिर में
रटते हरिजन थे राम-राम
पर अपनी इस मधुशाला में
जपते मतवाले जाम-जाम ;
पंडित मदिरालय से रूठा,
मैं कैसे मंदिर से रूठूँ ?
मैं फर्क बाहरी क्या देखूँ,
मुझको मस्ती से महज़ काम।
भय-भ्रांति-भरे जग में दोनों
मन को बहलाने के अभिनय।....मिट्टी

(6)

संसृति की नाटकशाला में
है पड़ा मुझे बनना ज्ञानी

है पड़ा मुझे बनना प्याला,
होना मदिरा का अभिमानी ;
संघर्ष यहाँ किसका किससे,
यह तो सब खेल-तमाशा है।
वह देख, यवनिका गिरती है,
समझा, कुछ अपनी नादानी।
छिप जाएँगे हम दोनों ही
लेकर अपने-अपने आशय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण-भर जीवन मेरा परिचय।

कठिन-शब्दार्थ

विलुप्त - तिरोधान, गायब
आतप - घाम, धूप
ठोंक बजाना - अच्छी तरह परख लेना
मीना बाज़ार - सुन्दर चीज़ों का वह बाज़ार जिसमें स्त्रियाँ ही सब चीज़ें बेचती हैं
महज़ - सिर्फ़, केवल
जाम - मदिरा
भ्रांति - भ्रम
संसृति - संसार
यवनिका - पर्दा

आत्मपरिचय

[इस कविता के द्वारा कवि ने अपने आदर्शों का परिचय दिया है। कवि जो कुछ जगत से अनुभव प्राप्त करता है उसके आधार पर अपनी भावनाओं का निर्माण करता है। समाज की मान्यताएँ कवि की दृष्टि में कभी बदलती प्रतीत होती हैं तो कभी कवि अपनी प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि वह अपने आदर्शों में ही मस्त है।]

मैं जग-जीवन का भार लिये फिरता हूँ
फिर भी जीवन में प्यार लिये फिरता हूँ;
कर दिया किसीने झंकृत जिनको छूकर
मैं साँसों के दो तार लिये फिरता हूँ।

मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ,
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ!

मैं निज उर के उद्गार लिये फिरता हूँ,
मैं निज उर के उपहार लिये फिरता हूँ;
है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता
मैं स्वप्नों का संसार लिये फिरता हूँ!

मैं जला हृदय में अग्नि, दहा करता हूँ
सुख-दुख दोनों में मग्न रहा करता हूँ;

जग भव-सागर तरने को नाव बनाये
मैं मन-मौजों पर मस्त बहा करता हूँ!

मैं यौवन का उन्माद लिये फिरता हूँ,
उन्मादों में अवसाद लिये फिरता हूँ,
जो मुझको बाहर हँसा रुलाती भीतर,
मैं, हाय, किसीकी याद लिये फिरता हूँ!

कर यत्न मिटे सब, सत्य किसीने जाना?
नादान वहीं है, हाय, जहाँ पर दाना!
फिर मूढ़ न क्या जग, जो इसपर भी सीखे?
मैं सीख रहा हूँ सीखा ज्ञान भुलाना!

मैं और, और, जग और, कहाँ का नाता,
मैं बना-बना कितने जग रोज़ मिटाता;
जगा जिस पृथ्वी पर जोड़ा करता वैभव,
मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता!

मैं निज रोदन में राग लिये फिरता हूँ,
शीतल वाणी में आग लिये फिरता हूँ;
हों जिसपर भूपों के प्रासाद निछावर,
मैं वह खंडहर का भाग लिये फिरता हूँ!

मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना;

क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना!

मैं दीवानों का वेश लिये फिरता हूँ,
मैं मादकता निःशेष लिये फिरता हूँ;
जिसको सुनकर जग झूम झुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिये फिरता हूँ!

कठिन-शब्दार्थ

अवसाद - दुख
प्रासाद - महल
दाना - बुद्धिमान, समझदार

10. श्री रामकुमार वर्मा

जन्म : सन् 1905

डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी के रहस्यवादी कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आप एक ही साथ सफल शिक्षक, कवि, नाटककार एवं आलोचक हैं। एकांकी नाटक के तो आप पिता माने जाते हैं। हिन्दी एकांकी साहित्य की समृद्धि में आपने जो योगदान दिया, वह अविस्मरणीय है।

आपने हिन्दी काव्य के विकास में भी कम हाथ नहीं बँटाया है। आपकी कविताओं में प्रेम और अध्यात्म की भावनाओं की प्रचुरता होती है।

अब तक प्रकाशित आपके काव्य-ग्रंथों में 'निशीथ', 'चन्द्ररेखा' 'चन्द्रकिरण', 'आकाश-गंगा', 'हिमहास' आदि मुख्य हैं। 'एकलव्य' नाम से आपने एक महाकाव्य भी लिखा है।

आप एक अच्छे समालोचक भी हैं—'कबीर का रहस्यवाद', 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' आदि आपके समीक्षा-संबंधी महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

आजकल आप कोलंबो विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रधान बनकर श्रीलंका में हिन्दी फैलाने में लगे हुए हैं।

साधना के स्वर

[यदि 'बिखरने' पर विश्वास न हो तो 'विकास' की क्रिया प्रतिक्षण चल रही है। यही 'विकास' मेरे जीवन का विश्वास है। मुस्कान की अरुण रेखा मुझे प्रभातकालीन क्षितिज की परिधि ही तो ज्ञात होती है!]

कष्ट की गहराइयों में डूबकर,
जो खिला वह हृदय का जलजात है।

पूछता है कौन सुधि की
अश्रु-सिंचित सजल दूरी!
बात मैं पूरी कहूँ,
हर बार रह जाती अधूरी!

साँस की सौ ग्रंथियों में गूँथ लूँ,
पर बिखरने को बनी यह बात है।
कष्ट की गहराइयों में डूबकर,
जो खिला वह हृदय का जलजात ॥

कल्पना की पंक्तियों में
हैं अकर्मक सब क्रियाएँ;
और जीवन के अभावों
से बनीं हैं भावनाएँ;

इस विरह की नित्य बढ़ती राशि में,
लघु मिलन का कौन-सा अनुपात है?

कष्ट की गहराइयों में डूबकर,
जो खिला वह हृदय का जलजात है ।।

दृष्टि के मंगल कलश पर
प्रेम की लौ जगमगाती ;
साधना की एक कलिका,
फूल बनकर चढ़ न पाती,

तारकों की अधखिली कलियाँ लिये,
भाग्य-सी बैठी अँधेरी रात है ।
कष्ट की गहराइयों में डूबकर,
जो खिला वह हृदय का जलजात है ।।

इस गगन के शून्य में
अनुभूति की है चित्रकारी ;
इन्द्र-धनुषी मेघ-सी मैं
खींचता हूँ स्मृति तुम्हारी ;

किन्तु आँखों में उमड़कर रात-दिन,
आँसुओं की मदभरी बरसात है ।
कष्ट की गहराइयों में डूबकर,
जो खिला वह हृदय का जलजात है ।।

यह उठी रोमांच-सिहरन
रात के अन्तिम प्रहर-सी ;
शून्य नभ की भाँति मैं हूँ,
क्षितिज-रेखा है अधर-सी,

यदि मिले मुस्कान क्षण-भर के लिए,
तो कहूँगा प्रेम का यह प्रात है।
कष्ट की गहराइयों में डूबकर,
जो खिला वह हृदय का जलजात है।।

कठिन-शब्दार्थ

जलजात - कमल
अनुपात - सापेक्षिक संबंध
लौ - ज्योति, ज्वाला
ग्रंथि - गाँठ
अकर्मक - कर्मरहित, क्रियाहीन
सिहरन - पुलक

जीवन की गति

[जीवन की अनंत यात्रा में सुख-दुख तो नाना दृश्यों की भाँति पीछे छूटते जाते हैं। ये हमें बाँध नहीं सकते। जो इन दृश्यों को ही सब कुछ समझ लेते हैं वे अपनी यात्रा ही भूल जाते हैं। दिन और रात तो हमारी यात्रा के विराम-स्थल हैं, यात्रा नहीं। पथिक! अपनी यात्रा में बढ़ो! अपने कष्टों को उन पत्थरों के पास छोड़ दो जिनसे तुम्हें ठोकर लगी है।]

मुझसे यह मत कहो कि जीवन आज और कल का संचय है।
यौवन के साथी से मेरा, देखो, युग-युग का परिचय है।।

करुणा के वे गीत छोड़ दो,
निर्झर की पतली धारों को,
दुख के चित्र अतीत छोड़ दो,
प्रातः के बुझते तारों को।

प्रथम मिलन की भाँति, विरह की भाँति, तुम्हारा हुआ उदय है।
मुझसे यह मत कहो कि जीवन आज और कल का संचय है॥

भूलो उन बातों को जिनमें
एक सिसक से गीत बनाये।
और रजत-रातों को जिनके
उलझे क्षण दृग से सुलझाये।

जिनमें प्रिय मुस्कान और आँसू का चिर संचित अभिनय है।
मुझसे यह मत कहो कि जीवन आज और कल का संचय है॥

जो चितवन को शर कहते हैं
वे चितवन को क्या पहिचानें?
बिना बादलों के कैसे हो
जाती है बरसात न जाने!

उठी दृष्टि में सृष्टि और कुछ-उठी दृष्टि में उन्हें प्रलय है।
मुझसे यह मत कहो कि जीवन आज और कल का संचय है॥

मैं इन लहरों के बन्धन में
कस न सकूँगा बन्धनवालो!
मैं इस प्रेमभरी चितवन में
बस न सकूँगा, कुछ कर डालो।

हाँ, केवल मुझसे यह कह दो—'पथिक! तुम्हें पथ मंगलमय है'।
मुझसे यह मत कहो कि जीवन आज और कल का संचय है॥

11. श्री भगवतीचरण वर्मा

जन्म : सन् 1903

श्री भगवतीचरण वर्मा का जन्म सन् 1903 ई. में हुआ था। आधुनिक हिन्दी की उत्थान-कालीन धारा के प्रमुख कवियों में आपका भी नाम लिया जाता है। जवानी के दिनों में आप खूब मस्त होकर कविताएं लिखा करते थे और उन दिनों आपका झुकाव प्रगतिवाद की ओर अधिक था। लेकिन आजकल आप कवि से ज्यादा कथाकार के रूप में मशहूर हैं।

श्री वर्माजी के कई उपन्यास भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'चित्रलेखा', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव', 'अपना खिलौना', 'सामर्थ्य और सीमा', 'भूले बिसरे चित्र' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

सलाह

[कवि पाठकों को सलाह देते हैं कि जीवन सुख-दुख से भरा है। उन दोनों को समान रूप से ग्रहण करना चाहिए। वैविध्यपूर्ण जीवन ही यथार्थ है। द्वन्द्वात्मक भावनाएँ जीवन को मधुर बनाये हुए हैं। उनसे दूर भागने की कोशिश व्यर्थ है।]

देखो, सोचो-समझो, सुनो-गुनो औ' जानो,
इसको-उसको, सम्भव हो निज को पहचानो,
लेकिन अपना चेहरा जैसा है रहने दो
जीवन की धारा में अपने को बहने दो।

तुम जो कुछ हो, वही रहोगे—मेरी मानो!
वैसे तुम चेतन हो, तुम प्रबुद्ध ज्ञानी हो,
तुम समर्थ, तुम कर्ता, अतिशय अभिमानी हो,
लेकिन अचरज इतना, तुम कितने भोले हो,
ऊपर से ठोस दिखो, अन्दर से पोले हो।

बनकर मिट जाने की एक तुम कहानी हो!
पल में हँस देते हो, पल में रो पड़ते हो,
अपने में रमकर तुम अपने से लड़ते हो,
पर यह सब तुम करते-इसपर मुझको शक है।

जमने की कोशिश में रोज़ तुम उखड़ते हो!
थोड़ी-सी घुटन और थोड़ी रंगीनी में,
चुटकी-भर मिरचे में, मुट्ठी-भर चीनी में
ज़िन्दगी तुम्हारी सीमित है—इतना सच है।

इससे जो कुछ ज़्यादा, वह सब तो लालच है,
दोस्त! उम्र कटने दो इस तमाशबीनी में।
धोखा है प्रेम-बैर—इसको तुम मत ठानो,
कड़ुवा या मीठा—रस तो है छककर छानो।

चलने का अन्त नहीं, दिशा-ज्ञान कच्चा है,
भ्रमने का मारग ही सीधा है, सच्चा है!
जब-जब थककर उलझो तब-तब लम्बी तानो!

कठिन-शब्दार्थ

प्रबुद्ध - जागृत, ज्ञानी
घुटन - साँस का भीतर ही दब जाना
उखड़ना - अपनी जगह से हटना
तमाशबीनी - ऐयाशी

दोस्त एक भी नहीं जहाँ पर

[कवि बताते हैं कि आज का मनुष्य इतना दुर्बल हो गया कि उसको शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ कुंठित-सी प्रतीत होती हैं। मानव उत्थान के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रयत्नशील है। उसमें आशा, विश्वास, प्रेम, अमरत्व प्राप्ति की आकांक्षा, इनकी कमी नहीं, लेकिन उपर्युक्त उत्तम भावनाओं की अपेक्षा उसमें घृणा, हिंसा एवं प्रतिशोध की भावनाएँ कितनी ही तीव्र हो गयी हैं; फिर भी सच्चे व्यक्ति इन विपरीत स्थितियों में धर्म और ईमान का अनुसरण करते सीना तान के चलते हैं।]

दोस्त एक भी नहीं जहाँ पर, सौ-सौ दुश्मन जान के,
उस दुनिया में बड़ा कठिन है चलना सीना तानके।

उखड़े,उखड़े आज दिख रहे हैं तुमको जो, यार, हम,
यह न समझ लेना जीवन का दाँव गये हैं हार हम।
वही स्वप्न नयनों में, मन में वही अड़िग विश्वास है,
खो बैठे हैं किन्तु अचानक अपना ही आधार हम।

इस दुनिया में जहाँ लोग हैं बड़े आन के बान के,
हम तो देख रहे हैं तेवर दो दिन मेहमान के।

डगमग अपने चरण स्वयं ही, इतना हमको ज्ञान है।
निज मस्तक की सीमा से भी अपनी कुछ पहचान है।
पर सक्षम है कौन यहाँ पर ? या किसमें सामर्थ्य है ?
हमने तो पायी आँसू से भीगी हर मुसकान है।

मृत्यु चुनौती जहाँ दे रही है जीवन को हर तरफ़,
कुछ अजीब-से खेल वहाँ पर मान और अपमान के।

यह मानव वैसा ही भोला, वैसा ही कमज़ोर है,
और नियति की अनजानी-सी वैसी कठिन हिलोर है,
किन्तु मिटने का मिटाने का क्रम है बेहद बढ़ गया,
और बढ़ गया रोना, बेहद इस दुनिया का शोर है।

हमको लगता आ पहुँचे हैं हम मरघट के देश में,
लोग जहाँ पर पागल बनकर आदी हैं विषपान के।

युगों-युगों से यह मानव है उठता-गिरता चल रहा,
यह प्राणों का दीप यहाँ पर बुझ-बुझकर फिर जल रहा,
यहाँ चेतना अमर, भावना अमर, अमर विश्वास है,
इसी अमरता की छाया में प्रेम निरन्तर पल रहा।

किन्तु घृणा से दूषित, हिंसा से सहमी हर साँस है,
और पहन रक्खे हैं हम सबने जामे शैतान के!

यह भी क्या बात कि इसपर सर पटकें हम व्यर्थ ही,
और देखते रहें दूसरों के हम सदा अनर्थ ही;
एक दर्द जो उठ पड़ता है कभी-कभी वह भूल है,
सच तो यह, हम नहीं जानते हार-जीत का अर्थ ही।

वैसे वैभव और सफलता से हमको भी मोह है,
पर क्या करें कि हम कायल हैं धर्म ईमान के!
हमको तो चलना आता है केवल सीना तान के॥

कठिन-शब्दार्थ

दाँव - होड़
अड़िग - अटल, स्थिर
तेवर - क्रोध-भरी दृष्टि
सक्षम - शक्तिशाली, जिसमें क्षमता हो
चुनौती - ललकार
जामा - पहनावा, पोशाक
कायल - अनुरक्त, मुग्ध

12. श्री रांगेय राघव

जन्म : सन् 1923 मृत्यु : सन् 1962

आधुनिक युग की युवा प्रतिभाओं में डाक्टर रांगेय राघव अद्वितीय थे। आपकी बहुमुखी प्रतिभा विद्वानों तक को चकित करनेवाली थी। आपने पद्य एवं गद्य की विविध विधाओं के विकास में जो योगदान दिया वह अद्भुत एवं अनुपम है। आप उच्चकोटि के कथाकार, गद्यलेखक, समालोचक एवं कवि थे। आपकी अनेक रचनाएँ हिन्दी की विभिन्न संस्थाओं तथा सरकारों द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं।

आपने अल्पायु में ही 'मेधावी' नामक प्रबंध काव्य लिखकर हिन्दी काव्य-जगत में अपना अमिट स्थान बना लिया है। वह काव्य हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा पुरस्कृत भी हो चुका है। आपने अनेक फुटकल कविताएँ भी लिखी हैं, जो संग्रहों में प्रकाशित हैं। इस संग्रह में 'मेधावी' काव्य से ही थोड़ा अंश दिया गया है।

आपके उपन्यासों में 'कब तक पुकारूँ', 'राह न रुकी', 'पक्षी और आकाश', 'राई और पर्वत' आदि उत्तमोत्तम हैं। आपकी मृत्यु 39 वर्ष की अल्पायु में हुई। इसी कम अवस्था में आपने 137 पुस्तकें हिन्दी साहित्य को भेंट की हैं, यह आपकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक है।

आप एक सफल अनुवादक भी थे। शेक्सपीयर की कुछ महत्वपूर्ण कृतियों का आपने सुन्दर एवं प्रामाणिक अनुवाद भी प्रस्तुत किया है।

मैं हूँ मानव

[यह अंश 'मेधावी' नामक प्रबंध काव्य से लिया गया है। इसमें मानव के संघर्षमय जीवन और उसके आशयों एवं विश्वासों का यथार्थ परिचय दिया गया है।]

"कौन हो तुम उन्मत्त विभोर,
दुखी होकर करते संघर्ष ;
युगांतर से पथ पर चल किन्तु,
रुद्ध हो जाता विकल अमर्ष ?"

"अरे मैं हूँ मानव, अभिराम
चला था स्वप्नों का ले भार ;
किन्तु अब देख रहा हूँ श्रांत,
नहीं मिलता मुझको सुखसार।

पहाड़ों, मैदानों, नभ, सिन्धु
सभी को आया हूँ मैं छान ;
समय का साथी बढ़ता नित्य,
और छाया-सा होता म्लान।

देख छायाएँ कैसी घोर
घेरती हैं मुझको दिन रात ;
बजेगी केवल सुख की बीन,
कौन-सा होगा विमल प्रभात ?

नहीं मैं ले पाया वह श्वास
मनुज का हो कल्याण प्रदीप्त;
अभी तक तो जो देते ज्योति,
श्वास से बुझते वह ही दीप।

थक गये पल भर को यह पाँव
किन्तु तत्पर फिर उठने आज;
उठा लेता हूँ मैं फिर शीश,
नम्र हो जाता जो कर लाज।

अरे यह निराकार जो रूप
सतत परिवर्तन की गति देख,
विश्व पर दिखता है चलमान
मनुज के जीवन पर कर रेख।

बदल जाते हैं घर के चित्र
बदल जाते हैं स्वयं विचार;
विचारों पर केन्द्रित हो भाव
बनाते सामाजिक आकार।

विचारों की वेला का अंत
मनुज के जीवन का अभ्यास,
कसौटी वह हीरक की घोर
चलाता स्वयं ग्रथित वह पाश।

आह मैं मानव हूँ अभिभूत,
विजय का करता हूँ अभिमान;
रात का तम जाता क्यों भूल,
जभी आता है दीप्त विहान।

उड़ सका है यह मनुज-विहंग
विचारों के जब आये पंख,
किन्तु वह गिर जाते हैं स्वयं
बदलती ऋतु के होकर अंग।

अरे यह सामाजिक उल्लास
नहीं रुक पाया अब तक देख,
प्राण का कंपन रुका न किन्तु
निराशा कर न सकी व्यतिरेक।

दूर तक भू के उर पर देख
छोड़ आया हूँ मैं पगचिन्ह;
सतत चलता हूँ मैं निर्बोध,
ध्वंस, निर्माण, आह कर खिन्न!"

कठिन-शब्दार्थ

विभोर - अपने को भूले हुए, मग्न
अमर्ष - क्रोध, असहिष्णुता
प्रदीप्त - ज्वलित, कांतिवान
चलमान - गतिशील
अभिभूत - वशीभूत
विहान - प्रातःकाल, भोर
व्यतिरेक - विरोध
निर्बोध - अज्ञान, नासमझ

13. श्री भवानीप्रसाद मिश्र

जन्म : सन् 1914

भवानी प्रसादजी ने 15-16 साल की अवस्था में ही कविताएं लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। तब से लेकर आज तक बराबर लिखते आ रहे हैं। विन्ध्याचल के आंचल में नर्मदा के किनारे आपने अपने कुछ वर्ष बिताये। रवीन्द्रनाथ का आप पर गहरा प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेकर आपने कारावास की सजा भोगी। कविताएँ तो बहुत लिखीं, लेकिन उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करने का आपको शौक न रहा।

श्री भवानीप्रसादजी प्रयोगवादी कवियों में अपना खास स्थान रखते हैं। 'दूसरा सप्तक' में आपकी कविताएँ संगृहीत हैं। उनसे पाठकों को विदित होगा कि मात्रा में कम होते हुए भी ये कविताएँ पाठक के मन पर कैसा प्रभाव डालती हैं। इनके अतिरिक्त आपकी कविताओं में 'अश्रु और आश्वास', 'बँधा सावन', 'आशा-गीत', 'वहनपर्व' आदि लंबी कविताएँ उच्च कोटि की हैं।

गीतफ़रोश

[कवि गीत बेचनेवाले एक व्यापारी के रूप में अपने को घोषित करते हुए अंत में अपना आत्मपरिचय दे डालते हैं, जिसमें वर्तमान समय के कवि की स्थिति का बोध होता है।]

जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ।
मैं तरह-तरह के
गीत बेचता हूँ ;
मैं सभी किसिम के
गीत बेचता हूँ।

जी माल देखिये दाम बताऊँगा,
बेकाम नहीं है, काम बताऊँगा।
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने ;
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने।
यह गीत, सख़्त सरदर्द भुलायेगा,
यह गीत पिया को पास बुलायेगा।
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको।
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान ;
जी, आप न हों सुनकर ज़्यादा हैरान।
मैं सोच-समझकर आख़िर
अपने गीत बेचता हूँ ;
जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ।

यह गीत सुबह का है, जाकर देखें,
यह गीत ग़ज़ब का है, ढाकर देखें।
यह गीत ज़रा सूने में लिक्खा था,
यह गीत वहाँ पूने में लिक्खा था।
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है,
यह गीत बढ़ाये से बढ़ जाता है;
यह गीत भूख और प्यास भगाता है;
जी, यह मसान में भूत जगाता है।
यह गीत भुवाली की है हवा हुज़ूर,
यह गीत तपैदिक की है दवा हुज़ूर।
मैं सीहे-साधे और अटपटे

गीत बेचता हूँ।
जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ।

जी, और गीत भी हैं, दिखलाता हूँ;
जी, सुनना चाहें आप, तो गाता हूँ।
जी, छन्द और बेछन्द पतन्द करें—
जो अमर गीत और वे जो तुरत मरें।
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात,
मैं पास रखे हूँ क़लम और दवात....
इनमें से भाये नहीं, नये लिख दूँ?
जो नये चाहिये नहीं, गये लिख दूँ।
इन दिनों कि दुहरा है करि-धन्धा,
हैं दोनों चीज़ें व्यस्त, क़लम, कन्धा।

कुछ घंटे लिखने के, कुछ फेरी के
जी, दाम नहीं लूँगा इस देरी के।
मैं नये पुराने सभी तरह के
गीत बेचता हूँ।
जी हाँ, हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।

जी, गीत जनम का लिखूँ, मरण का लिखूँ;
जी, गीत जीत का लिखूँ, शरण का लिखूँ;
यह गीत रेशमी है, यह खादी का,
यह गीत पित्त का है, यह बादी का।
कुछ और डिजाइन भी हैं, ये इल्मी—
यह लीजे चलती चीज़ नयी, फ़िल्मी।
यह सोच-सोचकर मर जाने का गीत,
यह दूकान से घर जाने का गीत,
जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात?
मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन-रात।
तो तरह-तरह के बन जाते हैं गीत।
जी, रूठ-रूठकर बन जाते हैं गीत।
जी, बहुत ढेर लग गया हटाता हूँ,
गाहक की मर्ज़ी—अच्छा, जाता हूँ।
मैं बिलकुल अन्तिम और दिखाता हूँ—
या भीतर जाकर पूछ आइये, आप।
है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप;
क्या करूँ मगर लाचार, हारकर

गीत बेचता हूँ ।
जी हाँ, हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ ।

कठिन-शब्दार्थ

गीतफ़रोश - गीत बेचनेवाला
किसिम - किस्म, तरह
पस्ती - कमीनापन, निचाई
मसान - श्मशान, मरघट
तपेदिक - यक्ष्मा, टी. बी.
बादी - वातकारक, वातविकार

14. श्री रामावतार त्यागी

जन्म : सन् 1925

नयी पीढ़ी के युवा कलाकारों में श्री रामावतार त्यागी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। आपने गीतों के माध्यम से सरल शब्दावली में गहरी से गहरी अनुभूति दी है। त्यागी ने अपने जीवन में इतनी पीड़ा और वेदना झेली है, जितनी शायद ही किसीने झेली हो। यही शायद उनके सफल कवि होने की कुंजी है।

श्री त्यागी के गीतों में वेदना और पीड़ा ने मूर्त रूप को धारण किया है। उनके गीत दर्दभरे तथा हृदय-स्पर्शी होते हैं। यही कारण है कि इन्हें 'पीड़ा का गायक' कहा जाता है। बच्चनजी के शब्दों में रामावतार त्यागी 'गीतों का बादशाह' हैं।

श्री त्यागी ने 'समाज', 'समाज कल्याण', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' इत्यादि पत्रों में कुछ समय तक कार्य किया है।

श्री त्यागी का प्रथम काव्य-संग्रह 1954 में 'नया खून' नाम से प्रकाशित हुआ। इसके कारण त्यागीजी पर्याप्त लोकप्रिय हुए। आपकी रचनाओं में 'नया खून' के अतिरिक्त 'आठवाँ स्वर', 'मैं दिल्ली हूँ' बहुत ही प्रसिद्धि पा चुकी हैं। आपने 'समाधान' नाम से एक सुन्दर उपन्यास लिखा है।

आजकल आप जो कविता कर रहे हैं, उसमें अतृप्ति, विद्रोह, असंतोष आदि नहीं रहे, उसके स्थान पर विश्वास, संतोष, आस्था आदि दिखाई देते हैं।

ज़िन्दगी आरंभ होती है

[आधुनिक युग के मानव की विवशताओं तथा दुर्बलताओं का सही मूल्यांकन इन पंक्तियों में कवि ने किया है। संघर्षपूर्ण जीवन का सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है।]

ज़िन्दगी आरंभ होती है!

जहाँ तक भी नज़र जाती धुआं ही हाथ आता है,
कहीं भी जल नहीं है सिर्फ़ रेगिस्तान गाता है,
कहीं भी घुँघरू की गूँज का धोखा नहीं होता,
विवशता इस क़दर है आदमी खुलकर नहीं रोता;
यहीं से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरंभ होती है!
खड़ी हैं बाँह फैलाये हुए हर ओर चट्टानें,
गुज़रतीं बिजलियाँ अपनी कमानें हाथ में ताने,
गज़ब का एक सन्नाटा कहीं पत्ता नहीं हिलता,
किसी कमज़ोर तिनके का समर्थन तक नहीं मिलता,
कभी उन्माद हँसता है, कभी उम्मीद रोती है।
यहीं से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरंभ होती है।
बराए नाम जीते हैं, बराए नाम मरते हैं,
उनींदी आँख से टूटे हुए सपने गुज़रते हैं,
उजाले और अपने बीच का पर्दा नहीं उठता,
सुबह आए न आए रात से पीछा नहीं छुटता,
उदासी साथ जगती है, उदासी साथ सोती है;
यहीं से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरंभ होती है।

बनाने के लिये हमने स्वयं क़िस्मत बनाई है,
विफलता मात्र पूँजी है, निराशा ही कमाई है,
जलन से दोस्ती है, उलझनों से आशनाई है,
लड़ाई है, अगर, अस्तित्व से अपने लड़ाई है,
स्वयं पतवार किश्ती को किनारे पर डुबोती है ;
यहीं से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरंभ होती है।

खुशी अकसर सिमाने से हमें आवाज़ देती है,
रुकावट दायरा बनकर हमेशा घेर लेती है,
कभी मेला लगा रहता पुकारों का, ख़यालों का,
कभी उत्तर नहीं मिलता बड़े भोले सवालों का,
न कुछ भी पास केवल आँख में ही एक मोती है !
यहीं से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरंभ होती है !

हमें जागा हुआ पाकर हमेशा रात हँसती है,
शरद की रात में भी आग अम्बर से बरसती है,
जिसे भी देख दें हम यह सितारा टूट जाता है,
अगर धारा पकड़ते हैं किनारा छूट जाता है,
कली हँसती कभी तो आँख में काँटे चुभोती है !
यहीं से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरंभ होती है !

कभी शमशान की धमकी, कभी तूफ़ान की गाली,
हमारी उम्र का प्याला कभी ग़म से नहीं ख़ाली,
मरुस्थल पर सुबह से शाम तक बादल बरसते हैं,
समन्दर में बसे हैं मगर जल को तरसते हैं ;

हमारे होंठ आकर मौत चुंबन से भिगोती है!
यहीं से, हाँ, यहीं से जिन्दगी आरंभ होती है!

भँवर में डूब जाते हैं अगर तो तर गये हैं हम,
जिलाने के लिए तस्वीर को खुद मर गये हैं हम,
किसी बारात में शामिल हमारा दिल नहीं होता,
हमारी राह का कोई सिरा मंजिल नहीं होता,
समझ सिन्दूर हमको माँग में आंधी सँजोती है!
यही से, हाँ, यहीं से जिन्दगी आरंभ होती है!

कठिन-शब्दार्थ

कमान - धनुष
बराए - वास्ते, के लिए
उनींदी - निद्रालू ; नींद से भरी
आशनाई - प्रेम ; दोस्ती
किश्ती - नाव
सिमाना - हद
अम्बर - आकाश
शमशान - श्मशान
समन्दर - समुद्र
संजोना - सजाना ; एकत्र करना

15. श्री नरेशकुमार मेहता

जन्म : सन् 1924

आपका जन्म मालव में हुआ और आपने काशी से एम.ए. किया। आप सदा आगे, केवल आगे ही बढ़ने के आकांक्षी हैं। आपकी दृष्टि में, राजनीति और साहित्य दो अलग वस्तुएँ नहीं, पर्यायवाची हैं।

प्रारंभ में आपने छायावादी और रहस्यवादी कविताएँ भी लिखीं, किन्तु उनको वे कविताएँ नहीं मानते। क्योंकि वे उन कवियों के प्रभाव से लिखी गयी हैं, जो उस समय उन वाद-विशेषों के प्रतिनिधि रहे। अतः किसीके प्रभाव से लिखी गयी कविता को आप द्वितीय श्रेणी की कविता मानते हैं।

आप प्रयोगवादी कवियों में अच्छा स्थान रखते हैं। 'दूसरा सप्तक' में आपकी उत्तम कविताएँ संगृहीत हैं। 'समय देवता' आपकी श्रेष्ठ कविता मानी जाती है।

किरन-धेनुएँ

[यह एक प्रयोगवादी कविता है। कवि ने नये उपमानों तथा रूपकों द्वारा सूर्योदयकालीन प्रकृति का मनोरम चित्र खींचा है।']

उदयाचल से किरन धेनुएँ,
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला!

पूँछ उठाये, चली आ रही
क्षितिज जंगलों से टोली,
दिखा रहे पथ, इस भूमि का
सारस सुना-सुना बोली,

गिरता जाता फेन मुखों से
नभ में बादल बन तिरता,
किरन धेनुओं का समूह
यह आया अंधकार चरता,
नभ की आम्र-छाँह में बैठा, बजा रहा वंशी रखवाला!

ग्वालिन-सी ले दूब मधुर
वसुधा हँस-हँसकर गले मिली,
चमका अपने स्वर्ण सींग वे
अब शैलों से उतर चलीं,

बरस रहा आलोक दूध है
खेतों खलिहानों में,

जीवन की नव किरन फूटती
मकई के धानों में,
सरिताओं में सोम दुह रहा, वह अहीर मतवाला !

कठिन-शब्दार्थ

क्षितिज - वह स्थान जहाँ पृथ्वी और आकाश मिले हुए-से दीखते हों
सारस - एक ताल (संगीत)
दूब - घास, दूर्वा
सोम - चंद्रमा
अहीर - ग्वाला

चरैवेति

[इस कविता में कवि ने मानव-समाज के जागृति एवं प्रगति के पथ पर अग्रसर होने की दिशा का संकेत किया है। अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ना प्रगति का द्योतक है। कवि नवीनता को ग्रहण करने की सलाह देता है।]

चलते चलो, चलते चलो !
सूरज के संग संग चलते चलो, चलते चलो !
तम के जो बन्दी थे,
सूरज ने मुक्त किये;
किरनों से गगन पोंछा,
धरती को रंग दिये;
सरज को विजय मिली, रितुओं की रात हुई।
कह दो इन तारों से चन्दा के संग-संग चलते चलो !
रत्नमयी वसुधा पर,
चलने को चरन दिये;

बैठी उस क्षितिज पार
लक्ष्मी शृंगार किये;
आज तुम्हें मुक्ति मिली, कौन तुम्हें दास कहे?
स्वामी तुम रितुओं के सम्वत् के संग-संग चलते चलो!

नदियों ने चलकर ही,
सागर का रूप लिया;
मेघों ने चलकर ही,
धरती को गर्भ दिया;
रुकने का मरण नाम, पीछे सब प्रसार हैं।
आगे है रंग-महल, युग के ही संग-संग चलते चलो!

मानव जिस ओर गया,
नगर बने, तीर्थ बने;
तुमसे है कौन बड़ा?
गगन-सिन्धु मित्र बने;
भूमी का भोगो सुख, नदियों का सोम पियो,
त्यागो सब जीर्ण वसन, नूतन के संग-संग चलते चलो!

कठिन-शब्दार्थ

संग - साथ
रितु - ऋतु
वसुधा - पृथ्वी
भूमी - भूमि
सिन्धु - समुद्र
जीर्ण - फटा-पुराना
सोम - एक प्रकार का पेय पदार्थ जो देवता पीते थे
वसन - वस्त्र

उर्दू-पद्य

1. ख़्वाजा अल्ताफ़ हुसैन हाली

जन्म : सन् 1840 मृत्यु : सन् 1916

आपका जन्म पानीपत (पंजाब) में हुआ। आप उर्दू के मशहूर शायर ग़ालिब के शिष्य थे, किंतु ग़ालिब में और आपमें बहुत बड़ा अन्तर था। ग़ालिब का दृष्टिकोण बहुत विशाल था। उनके विचार धर्म और देश की सरहदों को पार कर जाते थे। मगर आप धर्म को मानते ही नहीं, निबाहते भी थे। पक्के दीनदार मुसलमानों की तरह नेकी, सादगी और पाकीजगी के साथ रहते थे।

आपने उर्दू शायरी को एक नयी राह दी। पहले शायरी में सिर्फ़ प्रेम और मुहब्बत की बातों की भरमार रहती थी, किंतु आपने उसमें सामाजिकता का रंग दिया और क़ौम को जगानेवाले तराने लिखे। आपकी शायरी में समाज और देश को जगाने की भावनाएं प्रधान हैं।

आपकी किताबों का अनुवाद बहुत-सी भाषाओं में हो चुका है। 'मुनाजाते बेवा' का तरजुमा तो संस्कृत तक में हो चुका है। गुरुदक्षिणा के रूप में आपने 'यादगारे ग़ालिब' भी लिखी। अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी के संस्थापक सर सैयद अहमद की प्रेरणा से आपने 'मुसद्दस' लिखे, जिनमें मुसलमानों की तत्कालीन स्थिति का वर्णन बड़े मार्मिक ढंग से किया गया है। किसी भी क़ौम और किसी भी देश का आदमी इन्हें पढ़कर अपनी जिंदगी की राह को वदल सकता है और अपने आपको ऊँचा उठा सकता है। लेकिन मुसद्दस से भी अधिक आपकी प्रतिभा ग़जलों में बोलती है।

शायरी की तवारीख़ में आप हमेशा अमर रहेंगे।

अपनी गाड़ी आप हाँको

जो चाहें पलट दें यही सबकी काया,
कि एक-एक ने मुल्कों को है जगाया।
अकेलों ने है काफ़िलों को बचाया,
जहाजों को है जोरे कूँ ने तिराया

यही काम दुनिया का चलता रहा है।
दिये से दिया यूँ ही जलता रहा है॥

मगर बैठ रहने से चलना है बेहतर
कि है अहले हिम्मत का अल्लाह यावर।
जो ठंडक में चलना न आया मयस्सर,
तो पहुँचेंगे हम धूप खा-खाके सर पर।

यह तक़लीफ़ ओ राहत है सब इत्तफ़ाकी।
चलो अब भी है वक़्त चलने का बाक़ी।

बशर को है लाज़िम कि हिम्मत न हारे,
जहाँ तक हो काम आप अपना सँवारे।
खुदा के सिवा छोड़ दे सब सहारे,
कि है आरजी जोर, कमजोर सारे॥

आड़े वक़्त तुम बाएँ-दाएँ न झाँको।
सदा अपनी गाड़ी को तुम आप हाँको॥

कठिन-शब्दार्थ

जोरे कूं - संगठित शक्ति यावर - हिमायती, संरक्षक

2. अकबर इलाहाबादी

जन्म : सन् 1846 मृत्यु : सन् 1921

आपका जन्म जिला इलाहाबाद के बारा नामक क़स्बे में हुआ था। आप बड़े ही जिन्दादिल थे। रोतों को हँसा देना और मुरझाये दिलों को खिला देना आपके बाएँ हाथ का खेल था।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में ही आपने मुशायरे में पढ़कर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया था। आरंभ में आप गजलें लिखा करते थे, मगर आपकी प्रतिभा ग़ज़लों की चहारदीवारी में बहुत दिनों तक क़ैद न रह सकी और आगे चलकर वह मुख्तलिफ़ राहों से बहने लगी।

आप राष्ट्रवादी कवि थे और स्वतंत्रता-आन्दोलन से आपकी गहरी सहानुभूति थी। आपने प्रेम, धर्म, समाज-सुधार, राजनीति आदि सभी विषयों पर कविता की है। शायद ही कोई ऐसी राजनैतिक या सामाजिक समस्या हो, जिसपर आपने कटाक्ष न किया हो, व्यंग्य का कोड़ा न चलाया हो।

जीवन के अंतिम दिनों में आपको तरह-तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ा। इसलिए आप अन्य विषयों को छोड़ खुदा की महिमा का गान करने लगे और इस तरह अपना ग़म ग़लत करने लगे। आपके जीवन के उत्तर काल की रचनाओं में भक्ति और वैराग्य की जो प्रधानता नज़र आती है, उसकी वजह यही है।

नीति

रोना है तो इसीका कोई नहीं किसी का।
दुनिया है और मतलब, मतलब है और अपना ।।
अजल से वे डरें जीने को जो अच्छा समझते हैं।
यहाँ हम चार दिन की जिन्दगी को क्या समझते हैं?
ऊँचा नीयत का अपनी ज़ीना रखना।
अहबाब से साफ़ अपना सीना रखना ।।
सबाब कहना है मिल जाऊँगा, कर उनकी मदद।
छिपा हुआ मैं ग़रीबों की भूख-प्यास में हूँ ।।
गिरे जाते हैं हम खुद अपनी नजरों से, सितम ये है।
बदल जाते तो कुछ रहते, मिटे जाते हैं ग़म यही है ।।
खुशी बहुत है जहाँ में, हमारे घर न सही।
मलूल क्यों रहें दुनिया के, इन्तजाम से हम?
हकीम और वैद यकसाँ हैं, अगर तशखीस अच्छी हो।
हमें सेहत से मतलब है, बनफ्शा हो या तुलसी हो।

कठिन-शब्दार्थ

अजल - मृत्यु
ज़ीना - सीढ़ी
अहबाब - इष्ट-मित्र
सितम - अत्याचार
सबाब - पुण्य
मलूल - रंजीदा, उपेक्षित
यकसाँ - बराबर, सदृश
तशखीस - निदान
बनफ्शा - बनफ़शा, एक प्रकार की वनस्पति जिसकी जड़ और पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं

3. डॉ॰ शेख़ मुहम्मद 'इक़बाल'

जन्म : सन् 1875 मृत्यु : सन् 1937

आप सन् 1875 ई॰ में स्यालकोट (पंजाब) में पैदा हुए। इग्लैंड में बैरिस्टरी की सनद हासिल की और लाहौर में वक़ालत करने लगे।

शायर की हैसियत से सन् 1899 में आप जनता के सामने आये। विलायत जाने से पहले आप शुद्ध भारतीय नजर आते थे। भारत का हित अपना ईमान, हिन्दू-मुसलिम एकता अपना मज़हब और आज़ादी अपना लक्ष्य समझते थे और ये ही भाव उनकी उस समय की कविताओं में छलकते हैं। लेकिन विलायत से लौटने के बाद आप पूरे संप्रदायवादी बन गये और कविता का भी स्वर उसके साथ ही बदल गया।

उर्दू-फ़ारसी में आपकी कविताओं के एक दर्जन से अधिक संकलन प्रकाशित हो गये हैं। सच्चाई, सादगी और नवीनता के साथ आपने शायरी में कल्पना, भाव और भाषा के ऐसे रंग भरे हैं कि सुननेवाले सकते में आ जाते हैं। मंज़रनिगारी (प्रकृतिवर्णन) और फ़लसफ़ा (दर्शन) का मिश्रण कर अपने उर्दू शायरी में चार चान्द लगा दिये। रवि बाबू के बाद आपका ही नाम आता है जिन्होंने शायरी की बदौलत अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। सन् 1937 में आपकी मृत्यु हुई।

आपकी उर्दू कविताओं के संग्रह हैं :—

(1) बाँग दिरा (2) कुल्लियात-ए-इक़बाल।

ख़्वाहिश

दुनियाँ की महफ़िलों से उकता गया हूँ या रब,
क्या लुत्फ़ अंजुमन का जब दिल ही बुझ गया हो ;
शोरिश से भागता हूँ, दिल ढूँढ़ता है मेरा,
ऐसा सकूत जिसपर तक़रीर भी फ़िदा हो ।

मरता हूँ खामुशी पर ये आरज़ू है मेरी,
दामन में कोह के एक छोटा-सा झोंपड़ा हो ;
आजाद फ़िक्र से हूँ, उज़लत में दिन गुज़ारूँ,
दुनियाँ के ग़म का दिल से काँटा निकल गया हो ।

लज़्ज़त सरोद की हो चिड़ियों के चहचहों में,
चश्मे की शोरिशों में बाजा-सा बज रहा हो ;
गुल की कली चटककर पैग़ाम दे किसी का,
साग़र ज़रा-सा गोया मुझको जहाँ-नुमा हो ।

हो हाथ का सिरहाना, सब्जे का हो बिछौना,
शर्माये जिससे जलवत, खिलवत में वो अदा हो ;
मानूस इस क़दर हो सूरत से मेरी बुलबुल,
नन्हे-से दिल में उसके खटका न कुछ भरा हो ।

सफ़अ बाँधे दोनों जानिब बूटे हरे-हरे हों,
नद्दी का साफ़ पानी तस्वीर ले रहा हो ;
हो दिल-फ़रेब ऐसा कुहसार का नज़ारा,
पानी भी मौज बनकर उठ-उठके देखता हो ।

आग़ोश में ज़मीं के सोया हुआ हो सब्ज़ा,
फिर-फिरके झाड़ियों में पानी चमक रहा हो;
पानी को छू रही हो झुक-झुकके गुल की टहनी,
जैसे हसीन कोई आईना देखता हो।

मेहँदी लगाये सूरज जब शाम की दुलहन को,
सुरखी लिये सुनहरी हर फूल की कबा हो;
रातों को चलनेवाले रह जायें थकके जिस दम,
उम्मीद उनकी मेरा टूटा हुआ दिया हो।

बिजली चमक के उनको कुटिया मेरी दिखा दे,
जब आस्माँ पे हरसू बादल घिरा हुआ हो;
पिछले पहर की कोयल वो सुबह की मुअज़्ज़िन,
मैं उसका हमनवा हूँ वह मेरी हमनवा हो।

कानों पै हो न मेरे दैरो हरम का इहसाँ,
रौज़न की झोंपड़ी का मुझको सहरनुमा हो;
फूलों को आये जिस दम शबनम वज़ू कराने,
रोना मेरा वज़ू हो, नाला मेरी दुआ हो।

इस खामुशी में जाएँ इतने बुलन्द नाले,
तारों के क़ाफ़िले को मेरी सदा दरा हो;
हर दर्दमन्द दिल को रोना मेरा रुला दे,
बेहोश जो पड़े हैं, शायद उन्हें जगा दे।

कठिन-शब्दार्थ

रब - खुदा
आगोश - गोद, क्रोड़
अंजुमन - सभा
शोरिश - शोरगुल, हलचल
सकूत - शांति
कोह - पहाड़
उज़लत - एकांत
सरोद - तारवाला एक बाजा
चश्मा - झरना, सरिता
सागर - प्याला जिसमें दुनिया दीखे (ईरान में जमशेद बादशाह के पास ऐसा ही प्याला था।)
गोया - मानों
जहां-नुमा - संसार दिखानेवाला
जलवत - भीड़-भब्भड़, शोरगुल
खिलवत - एकांत, निर्जन स्थान
मानूस - मिली हुई

सफ़अ - क़तार, पंक्ति
जानिब - तरफ़
बूटे - पौधे, लता
कुहसार - पहाड़
मौज - लहर
कबा - चोग़ा
मुअज़्ज़िन - नमाज़ के समय अज़ां देनेवाला
हमनवा - साथ गानेवाला
रौज़न - छेद
सहर-नुमा - सबेरा बतानेवाला
वज़ू - नमाज़ के पहले हाथ-पैर धोना
नाला - रोकर प्रार्थना करना, आह
दरा - नगाड़ा, घंटे की आवाज़ (कारवां के निकलने के पहले का घंटा)
बुलन्द - ऊंचा, उच्च

हिमालय

ए हिमाला ! ए फ़सीले-किश्वरे-हिन्दोस्ताँ !
चूमता है तेरी पेशानी को झुककर आसमाँ !
तुझमें कुछ पैदा नहीं दैरीना-रोज़ी के निशाँ !
तू जवाँ है गर्दिशे-शांमो-सहर के दर्मियाँ !

एक जलवा था कलीमे-तूरे-सीना के लिए !
तू तजल्ली है सरापा चश्मे-बीना के लिए !

आती है नद्दी फ़राज़े-कोह से गाती हुई,
कौसर-ओ-तस्नीम की मौजों को शर्माती हुई !
आइना-सा शाहिदे-कुदरत को दिखलाती हुई,
संगे-रह से गाह बचती, गाह टकराती हुई ;

छेड़ती जा इस इराके-दिलनशीं के साज़ को
ए मुसाफ़िर, दिल समझता है तेरी आवाज़ को;

लैलिये-शब खोलती है आके जब ज़ुल्फ़े-रसा,
दामने-दिल खींचती है आबशारों की सदा ।
वह खमोशी शाम की, जिसपर तकल्लुम हो फ़िदा !
वह दरख़्तों पर तफ़क्कुर का समाँ छाया हुआ !

काँपता फिरता है क्या रंगे शफ़क़ कुहसार पर !
खुशनुमा लगता है यह गाज़ा तेरे रुख्सार पर !

ए हिमाला! दास्ताँ उस वक़्त की कोई सुना,
मस्कने-आबाए-इन्सा जब बना दामन तेरा!
कुछ बता उस सीधी-सादी ज़िन्दगी का माजरा,
दाग़ जिसपर ग़ाज़ाए-रंग-तकल्लुफ़ का न था!
हाँ, दिखा दे ए तसौवुर, फिर वो सुबहो-शाम तू!
दौड़ पीछे की तरफ़, ए गर्दिशे-ऐय्याम, तू!

कठिन-शब्दार्थ

फ़सीला - परकोटा
किश्वरे - देश
पेशानी - मस्तक
दैरीना - रोज़ी
गर्दिश - चक्कर, घुमाव
सहर - सुबह
दर्मियाँ - बीच, मध्य
जलवा - तड़क-भड़क, शोभा
कलीम - वक्ता
तूरा - घमण्ड
तजल्ली - प्रकाश, ईश्वरीय प्रकाश
सरापा - सिर से पैर तक, नखशिख पर्यंत
चश्मे-बीना - जो नेत्रों को दिखाई देता हो
फ़राज़े-कोह - ऊँचा पहाड़
कौसर - जन्नत या स्वर्ग की एक नहर, बड़ा दाता
तस्नीम - स्वर्ग की एक नहर
शाहिदे-कुदरत - सुन्दर प्रकृति
दिलनशीं - हृदयंगम
शब - रात, निशा
जुल्फ - सिर के बालों की लट
आबशार - जल-प्रपात, झरना
तकल्लुम - वार्तालाप
तफ़क्कुर - चिंता, शंका
ग़ाज़ा - मुँह पर मलने का सुगंधित चूर्ण; रोग़न
रुख़सार - कपोल, गाल
मस्कन - घर
माजरा - घटना, हाल
गाज़ए - रंग-मुँह पर मलने का एक सुगंधित चूर्ण
तसौवर - ध्यान, विचार
ऐय्याम - दिन, ऋतु

4. सैयद आशिक हुसैन 'सीमाब'

जन्म - सन् 1881

मौलाना आशिक हुसैन 'सीमाब' साहब 1881 ई. में आगरे में पैदा हुए। फ़ारसी अरबी और अंग्रेज़ी की तालीम अजमेर में पायी। शायरी का शौक़ लड़कपन से ही था। पहले मुंशी 'फ़िसू' साहब से इस्लाह लेते थे। फिर नवाब 'दाग़' के शागिर्द हुए। उनके मरने के बाद फिर और किसीसे इस्लाह नहीं ली। अभी आप मशहूर शायरों और विद्वानों में गिने जाते हैं। गद्य और पद्य में लगभग 80 किताबें आपने लिखी हैं। आपके नाटकों में 'ख़ूबसूरत बला' और 'फ़रेबे-वफ़ा' बहुत मशहूर हैं। आप कई रिसालों के संपादक भी रह चुके हैं। अजमेर से 'फ़ानूसे ख्याल' आगरे से 'आगरा अख़बार' निकाले। आजकल आगरे से अब भी 'शायर' निकल रहा है। आपकी शायरी की किताबों में 'कारे इमरोज़' और 'कलीमे आज़म' बहुत मशहूर हैं। आपके सौ के क़रीब शागिर्द हैं जिनमें 'साग़र निज़ामी और 'राज़' चांदपुरी ज़्यादा मशहूर हैं। इन्होंने 'हाली' और 'इक़बाल' के बीच की राह पकड़ी है और उसमें बहुत कामयाब हुए हैं।

मज़दूर

गर्द चेहरे पर, पसीने में जबीं डूबी हुई।
आँसुओं में कुहनियों तक आस्तीं डूबी हुई।
पीठ पर नाक़ाबिले बरदाश्त इक बारेगिराँ।
जाफ़ से लरज़ी हुई सारे बदन की झुर्रियाँ।
हड्डियों में तेज़ चलने से चटख़ने की सदा।
दर्द में डूबी मजरूह टख़ने की सदा।
पाँव मिट्टी की तहों में मैल से चिकटे हुए।
एक बदबूदार मैला चीथड़ा बाँधे हुए।
जा रहा है जानवर की तरह घबराता हुआ।
हाँपता, गिरता, लरज़ता, ठोकरें खाता हुआ।
मुज़महिल वामांदगी से और फ़ाक़ों से निढाल।
चार पैसे की तवक्कोह सारे कुनबे का ख़याल।

कठिन-शब्दार्थ

ज़बीं - माथा
बारेगिराँ - भारी बोझ
जाफ़ - मूर्छा, बेहोशी
लरज़ना - थरथर काँपना
चटख़ना - टूटना
सदा - ध्वनि
जमरूह - घायल

टख़ना - एड़ी के ऊपर उभड़ी हड्डी की गाँठ
मुज़महिल - बहुत थका हुआ
वामांदगी से - दुर्बलता के कारण
फ़ाका - उपवास, अनशन
तबक्कोह - आशा
कुनबा - परिवार

5. 'जोश' मलीहाबादी

जन्म : सन् 1896

नवीन युग के वर्तमान उर्दू शायरों में आपका नाम पहले आता है। आपका जन्म मलीहाबाद (लखनऊ) में सन् 1896 में हुआ।

कालिज छोड़ने के बाद आप निज़ाम रियासत में कुछ साल तक काम करते रहे। इसके बाद इस्तीफ़ा देकर देहली से 'कलीम' मासिक पत्र निकालने लगे। आप स्पष्टवादी हैं और अपने भावों को रंगीन शब्दों में छि ाकर नहीं, बल्कि वीर सैनिक की भाँति खोलकर कहते हैं। तमाम प्रतिक्रियावादी शक्तियों पर आपने क़रारी चोटें की हैं।

आपने प्राकृतिक सौंदर्य, देश-भक्ति, हिन्दू-मुस्लिम एकता, किसान-मज़दूर आदि पर काफ़ी लिखा है। आपका 'बग़ावत के गीत' नामक कविता-संग्रह हिन्दी में भी निकला है।

कुछ समय तक आप 'आजकल' (उर्दू) के संपादक थे। मगर उसे छोड़कर अब आप पाकिस्तान चले गये हैं। भारत में आपको काफ़ी सम्मान प्राप्त था, सरकार ने भी काफ़ी सुविधाएं आपको दे रखी थीं, लेकिन सबके बावजूद आपने अपने वतन से नाता तोड़ लिया।

इबादत

इबादत करते हैं जो लोग जन्नत की तमन्ना में।
इबादत तो नहीं है इक तरह की वोह तिजारत है।।

जो डरकर नारे दोज़ख़ से ख़ुदा का नाम लेते है।
इबादत क्या वोह ख़ाली बुज़दिलाना एक ख़िदमत है।।

मगर जब शुक्रोनेमत में ज़बाँ झुकती है बन्दे की।
वोह सच्ची बन्दगी है, इक शरीफ़ाना अताअत है।।

कुचल दे हसरतों को बेनियाज़े मुद्दआ हो जा।
ख़ुदी को झाड़ दे दामन से मर्देबाख़ुदा हो जा।।

उठा लेती हैं लहरें तहनशीं होता है जब कोई।
उभरना है तो ग़र्क़े मौजये बहरे फ़ना हो जा।।

कठिन-शब्दार्थ

इबादत - वंदना, पूजा
तिजारत - व्यापार
नारे दोज़ख़ - नरक की आग
शुक्रोनेमत - उपकार के लिए धन्यवाद
नेमत - ईश्वर की देन
अताअत - प्रदान, देना
बेनियाज़ - परम स्वतंत्र
ख़ुदी - अहंकार
मुद्दआ - दावा करनेवाला, मुद्दई
मर्देबाख़ुदा - पुनीतात्मा
तहनशीं - तह में बैठा हुआ
ग़र्क़ - डूबा हुआ
मौज - लहर
बहर - के लिए, के वास्ते
फ़ना - नाश, बरबादी

इन्सानियत का कोरस

बढ़े चलो, बढ़े चलो, रवाँ-दवाँ बढ़े चलो।
बहादुरो वो ख़म हुईं बुलंदियाँ बढ़े चलो,
पये-सलाम झुक चला वो आस्माँ बढ़े चलो,
फ़लक के उठ खड़े हुए वो पासवाँ बढ़े चलो,
ये माह है वो मेहर है ये कहकशा बढ़े चलो,
लिये हुए जमीन को कशा-कशा बढ़े चलो।
रवाँ-दवाँ बढ़े चलो, रवाँ-दवाँ बढ़े चलो॥

अभी निशां मिला नहीं है मंज़िले-निजात का,
अभी तो दिन के वलवले में वसवसा है रात का,
अभी लिया नहीं हैं दिल ने जायज़ा हयात का,
अभी पता चला नहीं है सिर्रे-कायनात का,
अभी नज़र नहीं हुई है राजदां बढ़े चलो।
रवाँ-दवाँ बढ़े चलो, रवाँ-दवाँ बढ़े चलो॥

तुम्हारी जुस्तजू में हैं रवाँ जहाँपनाहियाँ,
फ़लक की शहरयारियाँ, ज़मीं की कजकुलाहियाँ,
तुम, और बिसाते-बेदिली पे दिलशिकन जमाहियाँ,
हर इक क़दम पे हैं तो हों तबाहियाँ सियाहियाँ
दबाहियों, सियाहियों के दर्मियाँ बढ़े चलो।
रवाँ-दवाँ बढ़े चलो, रवाँ-दवाँ बढ़े चलो॥

क़रीबे-ख़त्म रात है, रवाँ-दवाँ सियाहियाँ,
सफ़ीना-हाए-रंगो-बू के खुल रहे हैं बादबाँ,
फ़लक धुला-धुला सा है जमीनां है धुआँ-धुआँ,
उफ़क़ की नर्म सांवली सियाहियों के दर्मियाँ
मचल रही हैं ज़रनिगार बढ़े चलो।
रवाँ-दवाँ बढ़े चलो, रवाँ-दवाँ बढ़े चलो ॥

कठिन-शब्दार्थ

रवाँ दवाँ - तेजी से जाता हुआ
ख़म हुई - झुकीं
पये सलाम - सलाम के लिए
फ़लक - आकाश
पासवाँ - रक्षक
माह - चाँद
मेहर - सूरज
कहकशा - आकाश-गंगा
कशाँ-कशां - खींचते हुए
मंजिले-निजात का - मुक्ति की मंज़िल का
वसवसा - भय
जायज़ा - संपरीक्षण, जाँच पड़ताल
हयात - जीवन
सिर्रे-कायनात - ब्रह्मांड के भेद
जुस्तजू - तलाश, खोज
जहाँ पनाहियाँ, शहरयारियाँ, कजकुलाहियाँ - बादशाहतें
बिसाते बेदिली पे - बेदिली के बिस्तर पर
दिलशिकन - हृदयभंजक
सियाहियाँ - अंधकार
सफ़ीना-हाए-रंगो-बू के - रंग तथा सुगंधि की नौकाओं (संसार) के
उफ़क़ - क्षितिज
ज़रनिगार - स्वर्णिम
सुर्ख़ियाँ - लालिमाएँ

6. जनाब साहिर लुधियानवी

साहिर की शायरी आज की शायरी है। तरक़्क़ीपसन्द शायरों में आपका अहम जगत है। आप कोरी कल्पना के घोड़े नहीं दौड़ाते, बल्कि अपने मीठे-कड़ुवे अनुभवों को गीतों में फूँककर श्रोताओं या पाठकों को जोश से भर देते हैं। आप जीवन की असफलताओं से निराश न होकर उनके प्रति विद्रोह की घोषणा करते हैं। इसलिए आपकी कविताएँ नव जागरण की प्रेरणा लेकर लोगों की ज़बानों पर थिरकती हैं।

आप आजकल फिल्मों के लिए गीत लिखा करते हैं। आपके गीत काफ़ी लोकप्रिय हुए हैं और अभी आपसे उर्दू अदब को बहुत-सी आशाएँ हैं।

ताजमहल

ताज तेरे लिए एक मजहरे उल्फत ही सहा।
तुझको इस वादिये रंगीं से अक़ीदत ही सही।
मेरी महबूब कहीं और मिलाकर मुझसे।
बज़्मेशाही में ग़रीबों का गुजर क्या मानी?
सब्त जिस राह पै हों सतवते शाही के निशाँ।
उसपै उल्फ़त भरी रूहों का सफ़र क्या मानी?

मेरी महबूब पसेपरदए तशहीरेवफ़ा,
तूने सतवतके निशानों को तो देखा होता?
मुर्दाशाहों के मक़ाबिर से बहलनेवालो,
अपने तारीक मकानों को तो देखा होता!
अनगिनत लोगोंने दुनिया में मुहब्बत की है?
कौन कहता है कि सादिक़ न थे जज़बे उनके?
लेकिन उनके लिए तशहीर का सामान नहीं,
क्योंकि वे लोग भी अपनी ही तरह मुफ़लिस थे।।

यह इमारत, यह मक़ाबिर, यह फ़सीलें, ये हिसार,
मुतलकुलहुक्म शहन्शाहोंकी अजमतके सतूँ।
सीनयेदहर के नासूर हैं, कुहना नासूर,
जज़्बे है उनमें तेरे और मेरे अजदादका खूँ।।
मेरी महबूब इन्हें भी तो मुहब्बत होगी?
जिनकी सन्नाई ने बख़्शी है उसे शक्लेजमील।

उनके प्यारों के मक़ाबिर रहे बेनामोनमूद,
आज तक उनपै जलाई न किसीने कन्दील ।।

यह चमनज़ार, यह जमना का किनारा, यह महल,
यह मुनक़्क़श दरोदीवार, यह महराब, यह ताक़ ;
एक शाहन्शाह ने दौलत सहारा लेकर,
हम ग़रीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक ।
मेरी महबूब कहीं और मिलाकर मुझसे ।।

कठिन-शब्दार्थ

मज़हरेउल्फत - प्रेम का द्योतक
वादिये रंगीं से - स्मरणीय स्थान से
अक़ीदत - श्रद्धा
महबूब - प्रेयसी
बज़्मेशाही में - बादशाही दरबार में
सब्त - अंकित
सतवते शाही के - बादशाही वैभव के
पसेपरदाए - परदे के पीछे
तशहीरे वफ़ा - वफा का विज्ञापन
सतवत के - वैभव के
मक़ाबिर से - मक़बरों से
तारीक - अंधेरा
सादिक - सच्चे
जज़्ब - भाव
फ़सीला - परकोटा, किसी नगर या दुर्ग के चारों ओर की दीवारें
हिसार - क़िला
मुतलक़ुलहुक्म - हुक्म देने में स्वतंत्र, मनमानी करनेवाले
सतूं - वैभव के खंभ
सीनयेदहरके - संसार के वक्षस्थल के
कुहना - पुराना
जज्ब - रमे हुए, समाये हुए
अजदाद का - पूर्वजों का
सन्नाई - कारीगरी
शक्ले जमील - सुन्दर रूप
बेनामो नमूद - बेनामो निशाँ
चमनज़ार - उद्यान, चमन
महराब - द्वार आदि के ऊपर का अर्द्ध-मंडलाकार भाग (Arch)
मुनक़्क़श - नक्शानिगारी की हुई

7. जनाब 'नज़ीर' अकबराबादी

1. रोटियाँ

पूछा किसीने यह किसी कामिल फ़कीर से—
"यह महरोमाह हक़ ने बनाये हैं काहे के?"
वह सुनके बोला, "बाबा! खुदा तुझको ख़ैर दे।
हम तो न चाँद समझें न सूरज हैं जानते।
बाबा! हमें तो यह नजर आती हैं रोटियाँ॥

रोटी न पेट में हो तो कोई जतन न हो।
मेले की सैर ख़्वाहिशे बाग़ो-चमन न हो।
भूखे ग़रीब दिल की खुदा से लगन हो।
सच है कहा किसीने भूखे भजन न हो।
अल्लाह को भी याद दिलाती हैं रोटियाँ"॥

कठिन-शब्दार्थ

काबिल - योग्य   महरोमाह - चन्द्र और सूर्य

2. आदमीनामा

दुनियाँ में बादशाह है सो है वह भी आदमी।
और मुफ़लिसोगदा है सो है वह भी आदमी।
जरदार बेनवा है सो है वह भी आदमी।
नेमत जो खा रहा है सो है वह भी आदमी।
टुकड़े जो माँगता है सो है वह भी आदमी॥

मसजिद भी आदमी ने बनाई है याँ मियाँ!
बनाते हैं आदमी ही इमाम और खुतबाख्वाँ।
पढ़ते हैं आदमी-ही क़ुरान और नमाज़ माँ।
और आदमी ही उनकी चुराते हैं जूतियाँ।
जो उनको ताड़ता है सो है वह भी आदमी ॥

याँ आदमी पै जान को वारे है आदमी।
और आदमी पै तेग़ को मारे है आदमी।
पगड़ी भी आदमी की उतारे है आदमी।
चिल्लाके आदमी को पुकारे है आदमी।
और सुनके दौड़ता है सो है वह भी आदमी ॥

याँ आदमी नक़ीब हो बोले है बार-बार।
और आदमी ही प्यादे हैं और आदमी सवार।
हुक्का, सुराही, जूतियाँ दौड़े बगल में मार।
कांधे पै रखके पालकी है दौड़ते कहार।
और उसमें जो बैठा है सो वह भी आदमी ॥

कठिन-शब्दार्थ

मुफ़्लिसो गदा - ग़रीब और भिक्षु
ज़रदार - धनी
बेनवा - चुप
प्यादा - पदाति
तेग - खड्ग
इमाम - नमाज़ पढ़ानेवाला
खुतबाख्वाँ - प्रवचन करनेवाला
नक़ीब - ख़ुशामदी गीत गानेवाला

प्राचीन पद्य

1. कबीरदास

जन्म : सन् 1398 मृत्यु : सन् 1518

कबीरदास के धर्मपिता का नाम नीरू तथा माता का नाम नीमा था। जाति के वे जुलाहे थे। अपने इस व्यवसाय को वे इतनी अधिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते थे कि मृत्युपर्यन्त इसीके द्वारा अपनी आजीविका चलाते रहे। जाति-पाँति की दीवार को तोड़कर सबको अपनी भक्ति-परंपरा में सम्मिलित करनेवाले स्वामी रामानंद के वे शिष्य थे।

कबीर की समस्त कृतियाँ तीन भागों में विभक्त हैं—साखी, पदावली (सबद) और रमैनी। 'साखी' में दोहे और कहीं-कहीं एकाध सोरठें भी हैं जिनमें अनेक उपदेशप्रद बातें कही गयी हैं। 'पदावली' में बाह्याडंबरों के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त किया गया है तथा ब्रह्म, जीव और माया के रहस्यात्मक वर्णन के साथ भगवत्प्रेम की पराकाष्ठा दिखायी है। 'रमैनी' में हम कबीर के सिद्धांत का विशिष्ट रूप पाते हैं। इसमें साखी और पदावली में प्रयुक्त विषयों के सिवाय उपदेश, गुरु और राम-संबन्धी भजन तथा योग, सत्संग और कर्तानिर्णय तथा कर्ता के स्वरूप संबंधी अनेक पद हैं।

कबीर के काव्य में हृदयपक्ष की प्रधानता है। काव्य-कला की दृष्टि से देखने पर उनके पद्य काव्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। यहाँ तक कि अनेक दोहे पिंगल के नियमों के प्रतिकूल हैं, पदों का भी यही हाल है। पर भाव, रस, प्रेम और भक्ति की दृष्टि से उनकी कृतियाँ अनुपम हैं। हिन्दी साहित्य में व्यंग्यात्मक शैली के सर्वप्रथम आविष्कर्ता कबीर ही हैं। उनकी रचनाओं में 'बीजक' मुख्य है।

कबीरदास

भजन

(1)

गुरु बिन कौन बतावै बाट, बड़ा विकट यम घाट।
भ्रांति पहाड़ी नदिया बिछ मों, अहंकार की लाट,
काम क्रोध दो पर्वत ठाढ़े लोभ चोर संघात।
मद मत्सर का मेहा बरसत, माया पवन बहै दाट,
कहत कबीर सुनो भाई साधो, क्यों तरना यह घाट॥

(2)

करम गति टारे नाँहि टरी।
मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को बन में बिपति परी।
कहँ वह फँद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी।
सीया को हरि लैगो रावन सुबरन लंक जरी।
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप गिरगिट जोन परी।
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु और भानु चंद्रमा बिधी सँजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, होनी होके रही॥

(3)

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगन फाँस लिए कर डोलै बोलै माधुरी बानी।

केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भइ पानी।
योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काइ के हीरा ह्वै बैठी काइ के कौड़ी कानी।
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो, यह सब अकथ कहानी ॥

(4)

दुइ जगदीस कहाँ ते आये, कहु कवने भरमाया।
अल्ला राम करीम केसो, हरि हजरते नाम धराया।
गहना एक कनक ते गहना, इनि महँ भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइकरि थापिनि, इक निमाजइक पूजा।
वही महादेव वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।
कोइ हिन्दू कोइ तुरक कहावै, एक जमीं पर रहिये।
वेद कितेब वै कुतुबा पढ़ै, वै मोलाना वै पांडे।
बेगरि बेगरि नाम धराये, इक मटिया के भांड़े।
कहँहि कबीर ते दोनों भूले, रामहि किनहुँ न पाया।
वे खस्सी वै गाय कटावै, बादहि जन्म गँवाया ॥

(5)

तोको राम मिलेंगे, घूँघट का पट खोल रे।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोले रे।
धन जोबन को गरब न कीजै, झूठा पँचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारिले, आसा सों मत डोल रे।

जात जुगत सो रंगमहल में, पिया पायो अनमोल रे ।
कहैं कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ।

कठिन-शब्दार्थ

बाट - मार्ग, रास्ता
बिछमों - बीच में
थाट - ऊँचा खंभा
ठाढ़ा - खड़ा हुआ
संघात - संयोग, समूह, आघात
मत्सर - डाह, क्रोध
टारे - टालने पर भी
सोध के - भली भांति जाँच करके
बिपति - आफ़त, विपत्ति
पारधि - बहेलिया, शिकारी
सुबरन - सोना, स्वर्णिम
तिरगुन - सत्व, रज और तमोगुण
अकथ - अवर्णनीय
दुइ - दो
कवने - किसने
कनक - सोना
दूजा - दूसरा
थापिन - स्थापित
वेद कितेब - वेद-ग्रंथ
कुतुबा - मुसलमानों का धार्मिक ग्रंथ
बेगरि - अलग, पृथक, भिन्न
मटिया - मिट्टी
भांड - बर्तन, पात्र
खस्सी - बकरा
किनहूँ - किसीने
पंचरंग - पंच तत्वों का बना
चोल - शरीर
सुन्न - शून्य
दियना - दीपक
जुगत - युक्ति, उपाय

कबीर के दोहे

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस का गात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यो तारा परभात॥

जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ै हरि भजै, भक्ति कहावै सोय॥

कबिरा छुधा कै कूकरी, करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारिकै, सुमिरन करो निसंक॥

मूरख सों क्या बोलिये, सठ सों कहा बसाय॥
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर बनाय॥

कथनी बदनी छांडिके, करनी सों जित लाय।
नरहिं नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय॥

पतिबरता पति को भजै, ओर न आह सुहाय।
सिंहबचा जो लंघना, तो भी घास न खाय॥

प्रेम छिपाया नहिं छिपै, जा घर परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय॥

तूँ तूँ करता तूँ भया, तुझमें रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहुँ अनत न जाय॥

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर होय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय॥

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय॥

सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय॥

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।
साध संगति हरि भगति बिन, कछु न आवै हाथ॥

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड खाइकै, कहै कौन मुख स्वाद॥

मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक॥

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गइ लाल॥

कठिन-शब्दार्थ

दोऊ - दोनों
काके - किसके
दियो - दिया
केरा - का
बुदबुदा - बुलबुला
अस - ऐसे

परभात - सवेरा, प्रभात
जब लग - जब तक
छुधा - क्षुधा, भूख
कूकरी - कुतिया
भंग - बाधा
याको - उसको

कबीर के दोहे

झारिकै - डालकर
सुमिरन - स्मरण
सठ - मूर्ख
पाहन - पत्थर
चोखा - तीखी धारवाला
बदनी - शारीरिक
छाँडिके - छोड़कर
सों - से
चिक - परदा
रिझाना - खुश करना
प्याये - पिलाये

सिंहबचा - सिंह शावक
लंघना - भूखा
परगट - प्रकट
अनत - अन्यत्र, दूसरी जगह
राखे - रखे
रंचक = थोड़ा-सा
मते - अनुसार, मतानुसार
मते - अभिप्राय
असवार - सवार, आरूढ़
लाल = भगवान

2. सूरदास

जन्म : सन् 1483 मृत्यु : सन् 1563

सूरदास के प्रारंभिक जीवन के संबंध में कुछ विशेष सामग्री प्राप्त नहीं होती। श्री वल्लभाचार्य से भेंट होने के पहले वे गऊघाट पर नवधा भक्ति में से दास्य भक्ति को अंगीकार कर विनय-संबंधी पदों की रचना किया करते थे। वल्लभाचार्यजी से भेंट होने पर उनके आदेश से सूरदास ने श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना प्रारंभ किया। वे अंधे थे और उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन शास्त्र-श्रवण, चिंतन, भगवान का कीर्तन, तथा कीर्तन के अनुरूप विविध विषयक पदों की रचना करने में व्यतीत किया। भक्ति के निरूपण में उन्होंने वासुदेवपरंपरा में प्रचलित पौराणिक घटनाओं का कहीं-कहीं आश्रय लिया है।

सूरदासजी की रचनाओं में 'सूरसागर' प्रसिद्ध है। सूरसागर में श्रीकृष्ण के आसपास की सारी सृष्टि उन्हें अपना सखा मान उनकी प्रत्येक लीला में भाग लेती है। कवि ने राधाकृष्ण के प्रेम-प्रसंगों का जो वर्णन किया है, उसमें मानव-हृदय के सूक्ष्म उद्गार हैं, और मानव की बचपन से वृद्धावस्था तक की सब प्रकार की वृत्तियाँ छिपी हैं। उन्हें पढ़ने से मनुष्य का हृदय सुख-दुख के भावों से स्पंदित होता रहता है। पाठक श्रीकृष्ण के हंसने के साथ हंसता है, उनके रोने के साथ रोता है और उनकी शृंगारिक चेष्टाओं में रागात्मिक वृत्ति का अनुभव करता है।

सूरदास-द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण अपने मानवीय रूप को छोड़ अतिमानव और कहीं-कहीं अलौकिक रूप को धारण करते हैं।

सूरदास के पद

विनय

(1)

छाँड़ि मन हरिविमुखन कौ संग।
जिनके संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग।
कहा होत पय पान कराये विष नहीं तजत भुजंग।
कार्गाहि कहा कपूर चुगायो, स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट, भूषण अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खेहि छंग।
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरी, चढ़त न दूजो रंग॥

(2)

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल!
काम-क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महा मोह के नूपुर बाजत, निंदा सबद रसाल।
भरम भर्यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल।
तृस्ना नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दै भाल।
कोटिक कलाकाछि देखराई, जलथल सुधिनहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरी करौ नँदलाल॥

(3)

मेरे मन अनत कहाँ सुख पावै?
जैसे उडि जहाज कौ पंछी फिरि जहाज पै आवै।

कमल-नयन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परमगंग को छाँड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै।
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ,क्यों करील फल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

बाललीला

(4)

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ?
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं, ह्वैहै लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत जैहै नागिन सी भुइँ लोटी।
काचौ दूध पियावति पचि पचि, देति न माखन रोटी।
सूर स्याम चिरजीवौ दोउ भैया हरि हलधर की जोटी॥

(5)

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसों कहत मोल को लीनौं, तू जसुमति कब जायौ।
कहा करौं यहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर।
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, जसुमति पुनि-पुनि रीझै।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मो गोधन की सौं, हौं माता, तू पूत॥

(6)

मैया मेरी मैं नहिं माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पीछे, मधुबन मोहिं पठायो ।
चार पहर बँसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो ।
मैं बालक बहियन को छोटो, छीको केहि विधि पायो ।
ग्वालबाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो ।
तू जननी मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायो ।
जिय तेरे कछु भेद उपजिहै, जानि परायो जायो ।
यह ले अपनी लकुटि कमरिया, बहुतहिं नाच नचायो ।
सूरदास तब बिहँसि जसोदा, लै उर कंठ लगायो ॥

भ्रमरगीत

(7)

ऊधो मन नाहिं दस बीस ।
एक हुतौ सौ गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस ।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस ।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस ।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस ।
सूर हमारै नंद-नँदन बिनु, और नहीं जगदीस ॥

(8)

निरगुन कौन देस को बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझति साँच न हाँसी ।
को है जनक कौन है जननी, कौन नारि को दासी ।
कैसे बरन भेख है कैसी किहिं रस मैं अभिलाषी ।

पावैगौ पुनि कियौ आपनौ, जोरे करैगौ गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ बावरौ, सूर सबै मति नासी॥

(9)

ऊधो हमहिं न जोग सिखै हैं।
जिहि उपदेस मिलैं हरि हमको, सो व्रत नेम बतैयैं।
मुक्ति रहौ घर बैठि आपने, निर्गुन सुनि दुख पैयैं।
जिहिं सिर केस कुसुम भरि गूँदे, कैसे भस्म चढैयैं :
जनि जनि सब मगन भई हैं, आपुन आप लखैयैं।
सूरदास-प्रभु सुनहु नवौंनिधि, बहुरि कि इहि ब्रज अइयैं॥

कठिन-शब्दार्थ

(1)

छांड़ि - छोड़कर
संग - साथ
पय - दूध
तजत - छोड़ना
भुजंग - साँप
स्वान - कुत्ता
खर - गधा
अरगजा - एक सुगंधित लेपन
मरकट - बंदर
न्हवाये - स्नान करावे
खेहि - धूल, राख
छंद - गोद, अंक
निषंग - बाण
खल - दुष्ट
कामरी - कंबल
दूजो - दूसरा

(2)

नाच्यौ - नाचा
चोलना - साधुओं का लंबा कुर्ता
रसाल - मधुर, रसीला
पखावज - मृदंग
तृस्ना - लालसा, प्यास
घट - शरीर
फेंटा - कमरबंद
काछि देखराई - पहनकर दिखलायी
अविद्या - अज्ञान
नंदलाल - नंदकुमार श्रीकृष्ण

(3)

अनत - अन्यत्र
पंछी - पक्षी
कूप - कुआँ
खनावै - खोदें
अंबुज . कमल
छेरी - बकरी

(4)

किती - कितनी ही, अनेक
काढ़ना - निकालना, बाहर लाना
गुहना - गूँथना
भुई-पृथ्वी
काचौ - कच्चा
हलधर - बलराम
जोटी - जोड़ी

(5)

खिझाना - चिढ़ाना
मोल को लीनों - खरीदा हुआ
जायो - जन्म दिया है
रिस - क्रोध, कोप
तातु - पिता
कत - क्यों, कैसे
चुटकी दै दै - चुटकी बजा-बजाकर
सिखै देत - सिखा देता है
दाउहि कबहुँ न खीझै - बड़े भाई पर क्रुद्ध नहीं होती

चबाई - चुगलखोर
धूत - धूर्त, दुष्ट
गोधन की सौं - गायों की क़सम

(6)

भोर - प्रातःकाल
पठायो - भेजा
बंसीबट - एक बटवृक्ष जिसके नीचे कृष्ण बंसी बजाया करते थे
भटक्यो - भटकता या घूमता रहा
साँझ परे - संध्या हो जाने पर
बहियन को छोटो - मेरी बाँहें छोटी हैं; मैं छोटी बाँहोंवाला हूँ
छीको - सीका, सिकहर
बैर - दुश्मनी
बरबस - जबर्दस्ती
भोरी - भोली
पतियाना - विश्वास करना
भेद - भेदभाव
जानि परायो जायो - दूसरे के गर्भ से पैदा हुआ जानकर
लकुटि कमरिया - लाठी और कंबल
नाच नचायो - तंग किया

(7)

बिहँसि - हँसकर
एक हुतौ - एक जो था
बरीस - बरस

(८)

सौंह - क़सम, शपथ
मैं - में
गाँसी - छल, कपट
ह्वै - है

(९)

नवौंनिधि - कुबेर की नौ निधियाँ—
पद्‌म, महापद्‌म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नीला और खर्व

3. तुलसीदास

जन्म : सन् 1532 मृत्यु : सन् 1623

तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम तुलसी था। उनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। पत्नी की ओर उनकी अत्यन्त आसक्ति थी। एक समय इसी आसक्ति के कारण वे उसके पीछे पागल होकर बिना सूचना दिये ही यकायक ससुराल पहुँच गये। पत्नी को उनका वहाँ आना बहुत बुरा लगा। उस समय उसने अत्यंत दुखी हो उद्बोधन-रूप में उन्हें कुछ वाक्य कहे। पत्नी का यह उद्बोधन कवि के लिए संजीवनी सिद्ध हुआ। उनका पत्नी की ओर का यह अत्यधिक झुकाव सार्वजनिक प्रेम में रूपांतरित हुआ। पत्नी की ओर की अपनी वासनाजन्य आसक्ति को अंत में ब्रह्मांड में व्याप्त राम की ओर मोड़कर वे संन्यासी हो घर से निकल पड़े।

तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। उन्हें वे सर्वस्व मानते थे और उन्हींपर उनका अटल विश्वास था। अपनी इस अविचल श्रद्धा के काराण ही उन्होंने वैदिककाल के वाङ्मय से लेकर अपने समय तक के प्राय: सब ग्रंथों का अनुशीलन, परिशीलन और अध्ययन किया। उस अध्ययन तथा चिंतन के परिणामस्वरूप उन्होंने वाल्मीकि से भिन्न स्वतंत्र रूप से रामचरितमानस की रचना की। उनका यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य का एक विराट ग्रन्थ है। इसके कारण ही वे आज प्रत्येक पाठक के श्रद्धाभाजन बने हुए हैं।

रामचरितमानस के अतिरिक्त उन्होंने रामलला नहछू, रामगीतावली, कृष्णगीतावली, रामाज्ञा प्रश्नावली, कवितावली, विनयपत्रिका, पार्वतीमंगल आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की है।

तुलसीदास के पद

(1)

गाइये गनपति जगबंदन।
संकर-सुवन भवानी-नंदन।
सिद्‌ध-सदन गज-वदन विनायक।
कृपा-सिंधु सुंदर सब लायक।
मोदक - प्रिय मुद - मंगल - दाता।
विद्‌या-वारिधि बुद्‌ध-विधाता।
माँगत तुलसीदास कर जोरे।
बर्सहि राम सिय मानस मोरे॥

(2)

कबहुँक अंब अवसर पाइ
मेरिऔ सुधि द्‌याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ।
दीन, सब अंग हीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ।
बूझिहैं 'सो है कौन' कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालु मेरी बिगरी और बनि जाइ।
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गाइ॥

(3)

काहे न रसना रामहि गावहिं?
निसिदिन पर-अपवाद वृथा, कत रटि-रटि राग बढ़ावहि।

नरमुख सुंदर मंदिर पावन बसि, जनि ताहि लजावहि।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत, रविकर-जल कहँ धावहि।
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि, सुनत श्रवन दै भावहि।
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति, करन कलंक नसावहि।
जातरूप मति, जुगुति, रुचिर मनि, रचि-रचि हार बनावहि।
सरन-सुखद रविकुल-सरोज-रवि, राम-नृपहि पहिरावहि।
वाद-विवाद स्वाद तजि हरि, सरस चरित चित लावहि।
तुलसीदास भव तरहि तिहूँ पुर, तू पुनीत जस पावहि।।

(4)

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी।
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों।
ब्रह्म तू हौं जीव तू हैं, ठाकुर हौं चेरो।
तात-मातु गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो।
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावै।।

(5)

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं।
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित-कंचनहिं कसैहौं।

परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥

(6)

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बेरी सम, जदुपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी।
नाते नेह रामके मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं।
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥

कठिन-शब्दार्थ

सुवन - सुत, पुत्र
वारिधि - समुद्र
कर जोरे - हाथ जोड़कर
कबहुँक - कभी
द्याइबी - दिलाइये
कहिबी - कहिये
रसना - जीभ
ताहि - उसको
कैरव - कुमुद
हौं - मैं
आरत - आर्त
हितु - भलाई चाहनेवाला
नाते - रिश्ते, संबंध
नसानी - नष्ट किया
सिरानी - समाप्त हुई, बीत गयी
महतारी - माता
मनियत - मानते हैं
सुसेव्य - आराधना या सेवा करने योग्य
एतो - यही
मतो - मत

वाटिका-प्रसंग

बागु तड़ाग विलोकि प्रभु हरषे बंधुसमेत।
परम रम्य आरामु यह जो रामहिं सुख देत॥
चहुँ दिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदितमन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥
सर समीप गिरिजागृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मनमोहा॥
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बर माँगा॥
एक सखी सिय संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेइ दोउ बंधु विलोके जाई। प्रेम बिवस सीता पहँ आई॥
तासु दसा देखि सखिन्ह पुलक गात जल नयन।
कहु कारन निज हरष कर पूछहिं तब मृदु बयन॥
देखन बागु कुँअर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनुबानी॥
सुनि हरषी सब सखी सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी।
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि संग आए काली॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी।
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहि देखन जोगू॥
तासु वचन अति सियहि सुहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई॥
सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनुसिसु मृगी सभीत॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥
मानहुँ मदन दंदुभी दीन्हीं।
मनसा विस्व विजय कहँ कीन्हीं ॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए विलोचन चारु अचंचल।
मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल ॥
देखि सीय सोभा सुख पावा।
हृदय सराहत वचन न आवा ॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई
बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई ॥
छबिगृह दीपसिखा जनु बरई ॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी।
केहि पटतरउँ विदेह कुमारी ॥

सिय सोभा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारी।
बोले सुचि मन अनुजसन वचन समय अनुहारि ॥

तात जनक तनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई।
पूजन गौरि सखी लइ आई। करत प्रकास फिरइ फुलवाई।
जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।
सो सब कारन जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपथ पगु धरहिं न काऊ।

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी।
जिन्ह के लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन दीठी।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं।

करत बतकही अनुजसन मन सिय रूपलुभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करै मधुप इव पान॥

चितवति चकित चहूँदिसि सीता।
कहँ गए नृपकिसोर मन चिंता॥
जहँ बिलोकि मृगसावक नयनी।
जनु तहँ बरिस कमल सित स्रेनी॥
लता ओट तब सखिन लखाए।
स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति छबि देखे।
पलकन्हि हू परिहरीं निमेषे।
अधिक सनेह देह भै भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन मग रामहिं उर आनी।
दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानीं।
कहि न सकहिं कछु मन सकुचानीं॥

लता भवन तें प्रगट भये तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥

सोभा सींव सुभग दोउ बीरा।
नील पीत जलजाभ सरीरा॥
मोरपंख सिर सोहत नीके।
गुच्छे बिचबिच कुसुम कली के॥

भाल तिलक स्रमबिंदु सुहाये।
स्रवन सुभग भूषन छबि छाये॥
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे।
नवसरोज लोचन रतनारे॥

चारु चिबुक नासिका कपोला।
हास बिलास लेन मन मोला॥
उर मनिमाल कंबु कल ग्रीवाँ।
काम कलभ कर भुज बल सींवाँ॥

सुमन समेत काम कर दोना।
साँवर कुँवर सखी सुठि लोना॥

केहरि कटि पट पीत धर सुखमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥

धरि धीरजु एक आलि सयानी।
सीता सन बोली गहि पानी॥

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू।
भूप किसोर देखि किन लेहू॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे।
सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे॥

नखसिख देखि राम कै सोभा।
सुमिरि पितापन मन अति छोभा॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता।
भई गहरु सब कहहिं सभीता॥
पुरि आउब एहि बिरियाँ काली।
अस कहि मन विहँसी एक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी।
भयउ बिलंब मातु भय मानी॥
धनि बडि धीर राम उर आने।
फिरि आपनपौ पितुबस जाने।

बेखन मिस मृग विहँग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़ै प्रीति न थोरि॥

कठिन-शब्दार्थ

चहुँ - चारों
गिरिजा - पार्वती
पठाई - भेजा
सुभग - सुन्दर
मज्जनु - स्नान
निकेता - वासस्थान, घर
बिहाई - छोड़कर चली गयी
बयन - वचन
किमि - कैसे
गिरा - वाणी
काली - कल
अवसि - अवश्य
अकुलाने - व्याकुल होने लगे
अग्र - आगे
जनु - मानो
सन - से
गुनि - मूल्कांकन कर, जानकर
मदन - कामदेव
तेहि ओरा - उस ओर
निमि - निमेष, पलकों का गिरना
बिरंचि - ब्रह्मा
बिरचि - सृष्टि करके

जुठारी - जूठा कर दिया
पटतरउं - बराबरी करूँ, उपमा दूं
अनुहारि - अनुसार, उपयुक्त
छोभा - विचलित हुआ, क्षुब्ध हुआ
फरकहिं - फड़कता है
पगु - पग
दीठि - दृष्टि
बतकही - बातचीत
इव - समान, सदृश
स्रेनी - श्रेणी, पंक्ति
निमेषे - पल-भर
जुग - जोड़ा, युग्म
बिलगाइ - अलग कर
जलजाभ - कमल की कांतिवाला
नीके - अच्छी तरह, भली भांति
रतनारे - लाल
कंबु - शंख
ग्रीवाँ - गरदन, गला, कंठ
कलभ - हाथी का बच्चा
सुठि - सुन्दर, बहुत अच्छा
केहरि - केसरी
उघारे - खोलना
कै - की
गहरु - गहृन
बिरियाँ - समय, बार
आपनपौ - अपने को
बहोरि - फिर, अनंतर
उर - हृदय

राम का वन-गमन

(1)

पुर तें निकसीं रघुवीर-वधू,
धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनीं जर की,
पुट सूखि गए मधुराधर कै ।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक,
पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै ?
तिय को लखि आतुरता पिय की,
अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ।।

(2)

जल को गए लक्खन है लरिका,
परिखौ पिय, छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं,
अरु पायँ पखारिहौं भू-भूरि डाढ़े ।
'तुलसी' रघुबीर पिया-स्त्रम जानि कै,
बैठि विलम्ब लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह लख्यौ,
पुलको तनु वारि विलोचन बाढ़े ।।

(3)

साँवरे गोरे सलोने सुभाय,
मनोहरता जिति मैन लियो है ।

बान कमान निषंग कसे,
सिर सोहैं जटा मुनि वेष कियो है।
संग लिये बिधुबैनी बधू,
रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तो पनहीं न, पयादेहि,
क्यों चलि हैं सकुचात हियो है।

(4)

रानी मैं जानी अजानी महा,
पवि पाहन हू तें कठोर हियो है।
राजहू काज अकाज न जान्यो,
कह्यो तिय को जिन कान दियो है।
ऐसी मनोहर मूरति ये,
बिछुरे, कैसे प्रीतम जोग जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोग,
इन्हें किमि कै वनबास दियो है॥

(5)

सीस जटा उर बाहु बिसाल,
बिलोचन लाल तिरछी-सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे,
'तुलसी' वन-मारग में सुठि सोहैं।
सादर बारहिं बार सुभाय,
चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं

पूछति ग्राम-वधू सिय सों
कहौ साँवरे से सखि रावरे को है ?

(6)

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने
सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन, दे सैन तिन्हें,
समुझाइ कछू मुसुकाई चली ।।
"तुलसी" तेहि औसर सोहैं सबै,
अवलोकति लोचन-लाहु अली ।
अनुराग - तड़ाग में भानु उदै,
बिगसीं मनो मंजुल कंज कली ।।

(7)

धरि धीर कहैं 'चलु' देखिय जाइ,
जहाँ सजनी रजनी रहि हैं ।
कहिहै जग पोच न सोच कछू,
फल लोचन आपन तौ लहि हैं ।।
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ,
कल आपसु मैं कछु पै कहि हैं ।
'तुलसी' अति प्रेम लगीं पलकैं,
पुलकीं लखि राम हिये महि हैं ।।

(8)

पद कोमल, स्यामल गौर कलेबर,
राजत कोटि मनोज लजाए ।

कर बान-सरासन सीस जटा,
सरसीरुह लोचन सो न सुहाए।
जिन देखे, सखी सतभायहु तें,
'तुलसी' तिन तौ मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोर वधू,
विधु-बैनी समेत सुभाय सिधाए॥

(९)

मुख पंकज कंज विलोचन मंजु,
मनोज-सरासन सी बनी भौंहैं।
कमनीय कलेबर कोमल, स्यामल-
गौर किसोर, जटा सिर सोहैं॥
'तुलसी' कटि तून,धरे धनु बान,
अचानक दीठि परी तिरछौंहैं।
केहि भाँति कहौं सजनी! तेहि सों,
मृदु मूरति द्वै निवसी मन मोहैं॥

कठिन-शब्दार्थ

(1)

द्वै - दो
बूझति - पूछती हैं
केतिक - कितनी
जल च्वै - जल से छलक उठीं

(2)

घरीक - घड़ी-भर, क्षण-भर
बयारि - पवन
भूभुरि - गरम रेत या गरम राख
डाढ़ना - जलना
नाह - पति, नाथ

(3)

सलोने = सुन्दर
पनहीं - जूता, चप्पल

पयादेही - पैदल

(4)

पवि - वज्र

बिधुरे - विकल, एकाकी

(5)

रावरे - आपके

(6)

बैन - वचन

सैन - इशारा, संकेत

औसर - अवसर, समय

उदै - उदय

बिगसीं - विकसित हुईं, खिल गयीं

(7)

पोच - नीच, अधम

बतियाँ - बातें

(8)

कलेवर - शरीर, बदन

मनोज - मन्मथ, कामदेव

सरसीरुह - कमल

सिधाए - चले गये

(9)

कमनीय - सुन्दर

तून - तरकस, तूणीर

दीठि - दृष्टि

4. मीराबाई

जन्म : सन् 1498 मृत्यु : सन् 1546

मीराबाई का जन्म मेड़ता (राजस्थान) में हुआ था। वह रत्नसिंह की सुपुत्री और राव दूदाजी की पौत्री थीं। उनका विवाह उदयपुर के महाराणा भोजराज के साथ हुआ था, जो विवाह के कुछ समय पश्चात ही अचानक काल-कवलित हो गये।

यों तो बचपन से ही नटनागर कृष्ण के प्रति उनकी पूर्ण भक्ति थी। परंतु वैधव्य के वज्रपात ने उनके हृदय में एक तीव्र वेदना उत्पन्न की, जिसके कारण वे भक्ति में विभोर हो स्वयं गिरिधरमय हो गयीं। कृष्ण के प्रति इस तल्लीनता को देखकर उनके बंधुजनों ने उन्हें बहुत कष्ट पहुंचाया। कहा जाता है कि मार्गदर्शन के लिए उन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को भी पत्र लिखा था। 'जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिये ताहि कोटि वैरि सम जद्दपि परम सनेही', उत्तर देकर गोस्वामीजी ने उन्हें भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत्त किया। संत रैदास उनके दीक्षागुरु थे।

मीराबाई हिन्दी की श्रेष्ठ कवयित्री हैं। कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में उनका स्थान सूरदास के बाद आता है। विद्यापति, कबीर, सूर और तुलसी आदि भक्त कवियों की तरह उनके पद भी लोगों के कंठहार बने हुए हैं। भाषा से अपरिचित होने पर भी दक्षिणवासी उनके पदों को सुन 'आण्डाळ' के पदों की तरह रस का अनुभव करते हैं।

मीरा के गीत उनकी अंतरात्मा की पुकार हैं। उनमें हृदय की कसक है, वियोगिनी का आर्त-क्रंदन है, आत्मनिवेदन है और है मार्मिकता तथा कोमलता का अद्भुत मिश्रण।

मीरा-माधुरी

(1)

कैसे जिऊँ री माई, हरि बिन कैसे जिऊँ री। (टेक)
उदक दादुर पीनवत है, जल से ही उपजाई।
पल एक जल कूँ मीन बिसरे, तलफत मर जाई।
पिया बिना पीली भई रे (बाला), ज्यों काठ घुन खाई।
औषध मूल न संचै रे (बाला), बैद फिर जाई।
उदासी होय बन बन फिरूँ रे, बिथा तन छाई।
दास मीरा लाल गिरधर, मिल्या है सुखदाई॥

(2)

भज मन चरनकँवल अबिनासी। (टेक)
जेताइ दीसे धरनि गगन बिच, तेताइ सब उठि जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी।
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठि जासी।
कहा भयो है भगवा पहरयो, घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिँ जानी, उलटि जनम फिर आसी।
अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जमकी फाँसी॥

(3)

दरसन बिन दुखन लागे नैन। (टेक)
जब से तुम बिछुरे मेरे प्रभुजी, कबहुँ न पायो चैन।

सबद सुनत मेरी छतियाँ कंपै, मीठे लगे तुम बैन।
एक टकटकी पंथ निहारूँ, भई छ मासी रैन।
बिरह बिथा कासूँ सजनी, बह गइ करवत ऐन।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटन सुख देन॥

(4)

म्हाँरो जनम मरन को साथी,
थाँ ने नहिं बिसरूँ दिन राती। (टेक)
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ, रोय रोय अँखिया राती।
यो संसार सकल जग झूँठो, झूँठा कुल रा नातीं।
दोउ कर जोड़ियाँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मद मातो हाथी।
सतगुरु दस्त धरचो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणाँ चित राती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती॥

(5)

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय। (टेक)
सांप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।

मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरिधर पै बलि जाय॥

(6)

अब मैं सरण तिहारोजी, मोहिँ राखो कृपा निधान। (टेक)
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी बिमान।
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत संत सुजान।
कुबजा, नीच भीलनी तारी, जानै सकल जहान।
कहँ लगि कहूँ गिनती नहिँ आवै, थकि रहे वेद पुरान।
मीरा कहै मैं सरण रावरी, सुनियो दोनों कान॥

(7)

म्हाँ सुण्या हरि अधम उधारण,
अधम उधारण भव भय तारण। (टेक)
गज बूड़तां अरज सुण धावा भगता कष्ट निवारण।
द्रुपद सुता को चीर बढ़ायो दुसाशण मद निवारण।
प्रह्लाद प्रतिज्ञा राखी हरणकुश री उदर विदारण।
थां रिख पतनी किरपा पाई विप्र सुदमा विपद विदारण।
मीराँ रे प्रभु अरजी म्हारी अब अबेर कुण कारण॥

(8)

मुरलिया बाजे जमना तीर।
मुरली म्हारो मन हर लीन्हो चित धरे ना धीर।
श्याम कन्हैया श्याम कमरिया श्याम जमना नीर।

धुन मुरली सुण सुध बुध बिसरी जर-जर म्हारो शरीर।
मीराँ रे प्रभु गिरिधर नागर वेग हरो म्हारी पीर ॥

कठिन-शब्दार्थ

(1)

उदक - जल, पानी
पीनवत - पीता है
कूं - को
तलफत - तड़पता है
बिथा - व्यथा, दुख

(2)

जासी - जाता है

(3)

लागे - लगता है
मेटन - मिटाने, दूर करने

(4)

दस्त - पंजा

(5)

पीवण लागी - पीने लगी

(6)

रावरी - तुम्हारी

(7)

सुण्या - सुना
अधम - नीच, पतित
उधारण - उद्धार करनेवाला
बूड़ताँ - डूबना
अरज - अर्जी, प्रार्थना
धावा - दौड़ पड़ा
द्रुपद सुना - द्रौपदी
रिख - ऋषि
मद - घमड
उदर विदारण - पेट चीरकर, वध करके
म्हारी - मेरी

(8)

कमरिया - कंबल, कमली
धुन - आवाज़, ध्वनि
सुण - सुनकर
बिसरी - भूलकर
जर-जर - कण-कण
वेग - जल्दी, शीघ्र
पीर - पीड़ा

5. रसखान

जन्म : सन् 1558 मृत्यु : सन् 1628

जिन मुसलमान कवियों ने कृष्णभक्ति को अपनाकर अपनी आंतरिक अनुभूति द्वारा हिन्दी में काव्य-रचना की है, उनमें रसखान का स्थान सर्वप्रथम है। वे दिल्ली के एक पठान थे। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' पुस्तक में यह उल्लेख है कि उन्होंने वल्लभ-संप्रदाय के गोस्वामी विट्ठलनाथजी से दीक्षा ली थी।

उनकी रचनाओं में भक्ति, शृंगार एवं वात्सल्य रस की त्रिपुटी है। भाषा बिलकुल स्वाभाविक है और उसमें माधुर्य एवं सौंदर्य का प्रवाह है। भाव एवं भाषा दोनों में सुन्दर सामंजस्य है। उस काल के अन्य कवियों की भाँति उन्होंने अपने काव्य में अलंकारों के लिए कहीं भी विशेष प्रयास नहीं किया, फिर भी उनकी रचनाओं में स्वाभाविक ढंग से अलंकारों का समावेश हो गया है।

रसखान की दो छोटी रचनाएँ 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' उपलब्ध हैं। केवल इन दो रचनाओं के कारण ही उन्होंने हिन्दी साहित्य में अपना अमर स्थान बना लिया है। 'प्रेमवाटिका' में बावन दोहे हैं जिनमें शुद्ध प्रेम का वर्णन है। 'सुजान रसखान' में एक सौ बीस दोहे, सोरठे, सवैये और कवित्त हैं। उनमें भक्ति और प्रेम का अद्भुत चमत्कार दृष्टिगोचर होता है।

रसखान-सुधा

(1)

कल कानन कुण्डल मोर-पखा, उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि, तरंग महाछवि छाजति है।
रसखानि लखे तन पीत-पटा, सतदामिनि की दुति लाजति है।
यह बाँसुरि की धुनि कान परे, कुल कानि हियो तजि भाजति है॥

(2)

गावैं गुनि गनिका गंधर्व औ, सारद सेस सबै गुन गावैं।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरंतर जाहि समाधि लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छँछिया भरि छाँछ पै नाच नचावैं॥

(3)

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवोनिधि को सुख, नन्द की गाय चराइ बिसारौं।
'रसखान' कबौं इन आँखिन सों, व्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

(4)

धूरिभरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अंगना पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी।
वा छवि को 'रसखान' विलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिए हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥

कठिन-शब्दार्थ

(1)

पीत-पटा - पीताम्बर
दामिनि - बिजली
कुल कानि - कुल की रीति

(2)

गावैं - गाते हैं
अहीर - ग्वाला
छोहरियाँ - लड़कियाँ
छँछिया - छाँछ पीने या नापने का छोटा पात्र

(3)

तिहूं पुर - तीनों लोक
आठहु सिद्धि - अष्ट सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व)
नवोनिधि - कुबेर की नौ निधियाँ
बिसारौं - भूल जाऊँ
कबौं - कब
निहारौं - देखूं
कलधौत - सोना-चाँदी
वारौं - न्योछावर करता हूँ

(4)

धूरि - धूल
पैंजनी - घुँघरू
कछोटी - काछनी
कलानिधि - चंद्रमा
काग - कौआ

6. बिहारी बोधिनी

जन्म : सन् 1603 मृत्यु : सन् 1663

रीतिकाल के श्रेष्ठ कवि बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर के पास बसुआ गोविंदपुर नामक गाँव में हुआ था। उनका बाल्यकाल बुन्देलखण्ड और युवाकाल मथुरा में व्यतीत हुआ। अपना अंतिम समय उन्होंने जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के आश्रय में बिताया।

बिहारी अपने समय के असाधारण कवि थे। पहले के प्रायः सब शृंगारिक काव्यों की सारी परंपराओं से अवगत होने के कारण उनकी उक्तियों में विदग्धता की मात्रा अधिक है। अपनी उक्तियों को अधिक परिमार्जित तथा व्यंग्यात्मक बनाने का प्रयास उन्होंने किया है। इसी कारण उनकी 'सतसई' में सहज भाव की अपेक्षा वक्रतायुक्त मादकता अधिक है।

बिहारी एक जागरूक कलाकार थे। उन्होंने अर्थ पर ठीक विचार करके ही शब्दों को उपयुक्त स्थान पर रखा है। इसके अतिरिक्त काव्य के उपयुक्त छंद, रस, अलंकार, लय और झंकार का निवेश कर उन्होंने काव्यगत सहज सौंदर्य को अधिक मादक बनाया है।

बिहारी का एकमात्र ग्रंथ 'सतसई' है, जिसपर संस्कृत के शृंगार-ग्रंथ 'गाथासप्तशती' 'अमरुशतक' आदि ग्रंथों की विशेष छाप है। रीतिकाल के ग्रन्थों में यही अधिक प्रसिद्ध है। गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के सिवाय इसी ग्रन्थ पर इतनी अधिक टीकाएँ लिखी गयी थीं। अनेक कवियों ने बिहारीलाल के मुक्तक दोहों के आधार पर सवैये, छप्पय तथा कुण्डलिया आदि की रचनाएँ की हैं।

बिहारी के दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुति होय ॥ 1 ॥

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यह बानिक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल ॥ 2 ॥

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोय।
बसति सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिंबित जग होय ॥ 3 ॥

सखि सोहति गोपाल के, उर गुंजन की माल।
बाहर लसति मनो पिये, दावानल की ज्वाल ॥ 4 ॥

तजि तीरथ हरि राधिका, तन-दुति करि अनुराग।
जिहि ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग ॥ 5 ॥

चिर जीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वै हलधर के वीर ॥ 6 ॥

सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि-सैल पर, आतप परचौ प्रभात ॥ 7 ॥

अधर धरत हरि के परत, ओंठ दीठ पट ज्योति ॥
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति ॥ 8 ॥

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सों कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥ 9 ॥

दुसह दुराज प्रजानि कौ, क्यों न बढ़ै दुख दंद।
अधिक अँधेरो जग करै मिलि मावस रविचन्द ॥ 10 ॥

कहैं यहै सब स्तुति सुमृति, यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही, पातक राजा रोग ॥ 11 ॥

सबै हँसत कर तारि दै, नागरता के नाँव।
गयौ गरब गुन कौ लबै, बसै गँवारे गाँव ॥ 12 ॥

मीत न नीत गलीत ह्वै, जो धन धरिए जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिए करोरि ॥ 13 ॥

कर लै सूँघि सराहिकै, रहै सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन ॥ 14 ॥

को कहि सकै बड़ेन सों, लखि बड़ी हू भूल।
दई दई जु गुलाब कौं, इन डारन वे फूल ॥ 15 ॥

पट पाँखै भखु काँकरै, सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि पै, एकै तुही विहंग ॥ 16 ॥

दिन दस आदर पाइकै, करि लै आपु बखान।
जौ लौं काग सराध पख, तो लौं तो सनमान ॥ 17 ॥

मरत प्यास पिंजरा परचौ, सुवा समय के फेर।
आदर दै दै बोलियत, बायस बलि कै बेर ॥ 18 ॥

चले जाहु ह्याँ को करत, हाथिन कौ ब्योपार।
नहिं जानत या पुर बसत, धोबी और कुम्हार ॥ 19 ॥

जगत जनायौ जिहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यौं आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं ॥ 20 ॥

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै राम ॥ 21 ॥

दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साईं मति भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल ॥ 22 ॥

जात जात बित होत है, ज्यों जिस में सन्तोष।
होत होत त्यों होय तौ, होय घरी में मोष ॥ 23 ॥

कठिन-शब्दार्थ

भव-बाधा - सांसारिक दुख
नागरी - चतुर
झाईं - परछाईं
हरित दुति - हरे रंगवाले, प्रसन्न मुख
काछनी - कसकर और कुछ ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई धोती जिसकी दोनों लाँगें पीछे खोंसी जाती हैं
यह बानिक - इस रूप या वेष में
मो मन - मेरे मन में
लसति - शोभित
जोरी - जोड़ी
को घटि - कौन कम है
वृषभानुजा - वृषभानु की पुत्री या वृषभ (बैल) की बहन (गाय) (श्लेषार्थ)
हलधर के बीर - बलराम के भाई (श्लेषार्थ-बैल के भाई)
सलोना - सुन्दर
आतप - धूप
अहि - सर्प
मयूर - मोर
मृग - हिरण
निदाघ - गरमी, ग्रीष्मकाल
दुसह - असहनीय
दुराज - बुरा शासन
मावस - अंधकार, अमावास्या
सयाने - चतुर, ज्ञानी

निसक - निश्शंक, बिना संदेह के
करतारि द - तालियाँ बजा-बजाकर
नागरता - नागरिकता, शिष्टता, सभ्यता
नाँव - नाम
मीत - मित्र
नीत - ग्रहण किया हुआ, संपत्ति
दई - देव
दई - दिया
डारन - डाल
पाँखै - पंख
भखु - भक्षण करना
सपर - पंखोंवालीं, सफ़र में
परेवा - कबूतर
परेई - कबूतरी
पुहुमि - पृथ्वी
सराध - श्राद्ध
पख - पक्ष
सुवा - सुग्गा, तोता
बायस - कौआ
जेहि - जिस
सरै - संपन्न
कांचै - कच्चा
सांचै - सत्य
रांचै - रमते हैं
कबूल - स्वीकार
बित - वित्त, धन
मोष - मोक्ष

7. भूषण

जन्म : सन् 1613 मृत्यु : सन् 1685

रीतिकाल के कवियों में केवल कविराज भूषण ही ऐसे कवि थे जिन्होंने उस काल की काव्य-परिपाटी से अलिप्त रहकर ओजस्विनी वाणी में वीररसप्रधान काव्य-रचना की। वे कानपुर ज़िले में हमार रोड़ पर स्थित तिकवांपुर के निवासी थे। राजदरबार में जाने से हले उनका नाम कुछ और था। उनकी वीररस-संबन्धी कविता सुनकर चित्रकूट के सोलंकी राजा ने जब उन्हें भूषण की उपाधि दी, तब से वे उसी नाम से प्रसिद्ध हुए।

भूषण के उपलब्ध ग्रन्थों में तीन प्रसिद्ध हैं—शिवराजभूषण, शिवा-बावनी और छत्रसाल दशक। 'शिवराज भूषण' शिवाजी की प्रशंसा में लिखित स्वतंत्र अलंकार-ग्रथ है। 'शिवा भवानी' में शिवाजी की प्रशंसा में बावन फुटकर उत्कृष्ट छंद हैं। 'छत्रसाल दशक' में महाराज छत्रसाल की प्रशंसा में लिखे गये दस छंदों का संग्रह है।

भूषण एक राष्ट्रीय कवि थे। उनकी कविता में वीररस का पूर्ण परि ाक हुआ है। वे उस काल क वीरशिरोमणि शिवाजी को सारे भारतवर्ष का नायक समझकर उनके नेतृत्व में सारे राष्ट्र को एक सूत्र में आबद्ध देखना चाहते थे। उनका काव्य तत्कालीन वातावरण तथा हिन्दुओं की मानसिक स्थिति का सच्चा परिचायक है। यद्यपि उनकी वाणी में हिन्दुत्व की प्रधानता है, पर उनका यह हिन्दुत्व का संदेश ही उस समय के लिए एक प्रकार से भारतीयता का संदेश था।

भूषण-गर्जन

(1)

इन्द्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र, अरु
इन्द्र को अनुज हेरै दुगध-नदीस को।
'भूषन' भनत सुरसरिता को हंस हेरै,
विधि हेरै हंस को चकोर रजनीस को॥
साहि-तने सिवराज करनी करी है तैं जु,
होत है अचंभो देव कोटियो तेंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस में हिराने, निज
गिरि को गिरीस हेरै, गिरिजा गिरीस को॥

(2)

दारुन दइत हिरनाकुस बिदारिबे को,
भयो नरसिंह रूप तेज बिकरार है,
'भूषन' भनत त्योंही रावन के मारिबे को,
रामचन्द्र भयो रघुकुल सरदार है॥
कंस के कुटिल बल बंसन बिधुसिबे को,
भयो जदुराय वासुदेव को कुमार है।
पृथ्वी पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे को तेरो अवतार है॥

(3)

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं

कन्द मूल भोग करैं, कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती हैं ॥
भूषन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग,
विजन डुलातीं ते वै विजन डुलाती हैं ।
'भूषण' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं ॥

(4)

वारिधि के कुंभ-भव, घन वन दावानल,
तरुन तिमिर हूँ के किरन समाज हौ ।
कंस के कन्हैया, कामधेनुहू के कंड काल,
कैटभ के कालिका, विहंगम के बाज हौ ॥
'भूषण' भनत जग जालिम के सचीपति,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ ।
रावन के राम, कातबीज के परसुराम,
दिल्लीपति दिग्गज के सेर सिवराज हौ ॥

(5)

आपसी की फूट ही ते सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति अति करके ।
पैडिगो पताल बली वज्रधर ईरषा तें,
टूट्यो हिरनाक्ष अभिमान चित धरते ॥
टूट्यो सिसुपाल वासुदेव जू सों बैर करि,
टूट्यो है महिष दैत्य ऊधम विचरते ।

राम कर छुवन ते टूट्यो ज्यों महेस चाप,
टूटी पातहासी सिवराज संग लरते ॥

(6)

हाथ तसबीह लिये उठै प्रात बन्दगी को,
आप ही कपट रूप कपट सुजप के।
आगरे में जाय दारा चौक में चुनाय दीन्हो,
छत्रहू छिनायो मनोमरे बूढ़े बाप के ॥
कीन्हो है सगोत घात सो में नाहिं कहूँ फेरि,
पील पै तीरायो चार चगुल के गप के।
'भूषन' भनत छरछन्द मतिमन्द महा,
सौ सौ चूहे खायकै बिलारी बैठी तप के ॥

कठिन-शब्दार्थ

(1)

भनत - कहते हैं
सुरसरिता - गंगा
रजनीस - चंद्रमा
साहि - राजा
हिराना - खो जाना, नष्ट होना, भूलना
गिरीस - शिवजी

(2)

दइत - दैत्य, राक्षस
हिरनाकुस - हिरण्यकश्यप
बिदारिबे - फाडने को, नष्ट करने
जदुराय - कृष्ण
म्लेच्छन - विदेशी, अनार्य

(3)

मन्दर - महल, गुफ़ा
कन्द - गूदेदार जड़, मिस्त्री
बेर - बार, बेर का फल
भूषन - आभूषण
भूखन - भूख, क्षुधा
विजन - पंखा, एकांत
नगन - नग्न, नग

(4)

वारिधि - समुद्र
तिमिर - अंधकार
कंड काल - मृत्यु
कैटभ - एक दैत्य जो विष्णु के हाथों से मारा गया
सचीपति - इंद्र
पन्नग - साँप
कातबीज - कार्तवीर्य

(5)

बज्रधर - इंद्र
ऊधम - शोरगुल, हंगामा
छुवन ते - छूने से
महेस चाप - शिव-धनुष
पातसाही - बादशाही, सलतनत
संग - साथ

(6)

तसबीह् - जपमाला
बन्दगी - प्रार्थना
छत्रहू छिनायो - राज्य छीन लिया
घान - आघात, चोट
पील - हाथी
गप - निगलने
सगोत - अपने वंशधर को
छरछन्द - धूर्त, कपट
मतिमन्द - मूर्ख

8. अब्दुर्रहीम खानखाना

जन्म : सन् 1556 मृत्यु : सन् 1635

कबिवर रहीम के पिता बैरमखाँ थे, जो क्रमशः बादशाह हुमायूँ तथा अकबर के प्रधान मंत्री रहे। पिता के देहांत के उपरांत अकबर ने उनकी शिक्षा-दीक्षा का संपूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया और योग्य अध्यापकों को रख संस्कृत, अरबी, फ़ारसी आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान उन्हें कराया।

रहीम के बारे में कहा जाता है कि वे बड़े दानी, परोपकारी और श्रीकृष्ण के भक्त थे। लोग उन्हें दानवीर कर्ण का अवतार कहते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी से भी उनकी घनिष्ठ मैत्री थी।

साहित्य की ओर उनकी विशेष रुचि बाल्यावस्था से ही थी। संस्कृत और फ़ारसी साहित्य का अध्ययन पूरा कर वे अवधी में रचना करने लगे। अकबर बादशाह के प्रिय-पात्र होने के कारण उन्हें समय-समय पर उनके साथ युद्ध, शिकार आदि में भी जाना पड़ता था। इस संघर्षशील जीवन का उनके हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनकी कविता में कल्पना की प्रचुरता के साथ-साथ भावुकता की अधिकता भी है।

रहीम के ग्रंथों में 'रहीम दोहावली' 'बरवै नायिकाभेद' 'मदनाष्टक', 'रास पंचाध्यायी' और 'शृंगार-सोरठ' अधिक प्रसिद्ध हैं। इन सबमें 'बरवै नायिकाभेद' उनकी श्रेष्ठ रचना है। बरवै छंद के जन्मदाता वे ही थे। संस्कृत वृत्तों में भी उन्होंने कुछ पद लिखे हैं।

रहीम-रत्नावली

राम न जाते हरिन-संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपने हाथ ॥ 1 ॥

वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥ 2 ॥

बिरह रूप घन तम भयो, अवधि-आस उद्योग।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥ 3 ॥

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनहारे को लगै, ज्यों मेहँदी को रंग ॥ 4 ॥

सदा नगारा कूच का, बाजत आठो जाम।
रहिमन या जग आइकै, को करि रहा मुकाम ॥ 5 ॥

सबको सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम ॥ 6 ॥

आछो काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होइ।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरिधर कहै न कोइ ॥ 7 ॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेचि जो खात ॥ 8 ॥

गुन तें लेत रहीम जन, सलिल कूप तें काढ़ि।
कूपहु तें कहूँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥ 9 ॥

जे रहीम विधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि ॥ 10 ॥

धन दारा अरु सतन सों, लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त ॥ 11 ॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जिअत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ॥ 12 ॥

पसरि पत्र झँपहि पितहि, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥ 13 ॥

फ़रजी साह न ह्वै सके, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चाल सों, प्यादो होत वज़ीर ॥ 14 ॥

मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥ 15 ॥

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागिबो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥ 16 ॥

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग ॥ 17 ॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होय ॥ 18 ॥

कठिन-शब्दार्थ

कतहुं - कहीं, किसी जगह
पाछिलो - पिछला
खद्योत - जुगनू
आठो जाम - चौबीसों घंटे, दिन-रात
धनिन - धनाढ्य
सलिल - पानी
काढ़ि - उखाड़कर
दूबरो - दुबला
कूबरो - टेढ़ा
सतन - शरीर
जिअत - जीता
अनत - अन्यत्र
फ़रज़ी - शतरंज में एक मुहरा
पसरि - फैलाकर
तासीर - प्रभाव, असर
मुकरि - इनकार
मातंग - हाथी
तारे - उद्धारकर